श्री शर्मा जी की बीसवीं निधन तिथि के अवसर पर
पद्मसिंह शर्मा स्मृति-दिवस-समिति, दिल्ली. द्वारा प्रस्तुत उपहार

सम्पादकाचार्य

श्री पं० पद्मसिंह शर्मा

(जीवनी, संस्मरण और कृतित्व)

जन्म : संवत् १९३३ वि० : : मृत्यु : संवत् १९८९ वि०
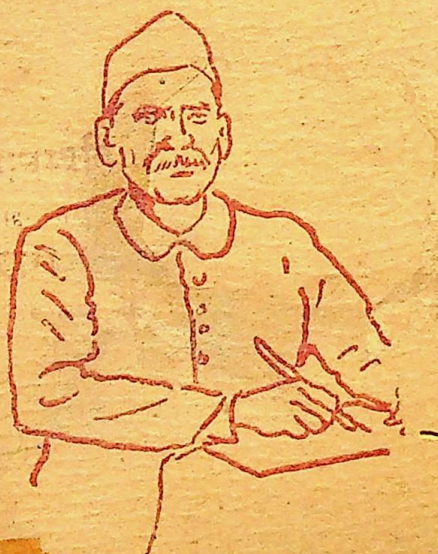
उच्छ्वसित क्यों न हो, सूना मानस सद्म ।
योग्य ही था अहो, वह पुण्यात्मा 'पद्म' ॥
—मैथिलीशरण गुप्त

*

प्रकाशक
आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली
१ अप्रैल १९५१

लेखक

शीर्षक

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

वक्तव्य

समालोचक-मूर्धन्य पंडित पद्मसिंह शर्मा के नाम से समस्त हिन्दी-संसार भली भाँति परिचित है। उनकी लेखन-पटुता, समालोचन-चातुरी तथा गहन विद्वत्ता की छाप द्विवेदी-युगीन साहित्य के पन्ने-पन्ने पर पत्थर की लकीर के समान अङ्कित है। यह दुर्भाग्य की बात है कि हमारे साहित्य के इतिहासकारों ने शर्मा जी की सेवाओं का मूल्यांकन यथोचित्त रूपेण नहीं किया। अभी तक चाहिए तो यह था कि शर्मा जी की बहुमुखी प्रतिभाओं पर प्रकाश डालने वाले अनेक ग्रन्थ हिंदी में प्रकाशित होते, किंतु ऐसा नहीं हो सका। प्रस्तुत पुस्तिका इसी दिशा में एक विनम्र सांकेतिक प्रयत्न है।

हमारी इच्छा तो यह थी कि यह कार्य शर्मा जी के समर्थ शिष्य पत्रकार-शिरोमणि पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी के सुदृढ़ और समर्थ कर-कमलों द्वारा सम्पन्न होता। किंतु कई अनिवार्य एवं विषम परिस्थितियों से आक्रांत होने के कारण श्री चतुर्वेदी जी इस कार्य को इस विशिष्ट अवसर पर नहीं कर सके; ऐसी स्थिति में यह कार्य समिति के संयोजकों ने मेरे निर्बल कंधों पर डाला। यद्यपि ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए पर्याप्त समय अपेक्षित था; किंतु फिर भी केवल दो-तीन दिन की दौड़-धूप में जो कुछ हो सका, वह आपके हाथों में है।

मैंने यह पूर्ण प्रयत्न किया है कि इसमें शर्मा जी के कृतित्व की बहुमुखी दिशाओं पर प्रकाश डालने वाल[illegible] समें मैं कहाँ तक सफल हो सका हूँ इसका नि[illegible] रेंगे। मैं तो इसे 'अभावे शालि चूर्णं वा' सम[illegible] ा हूँ।

इस प्रसंग में राजधानी व[illegible] ासर्स आत्माराम एण्ड संस के संचालक श्री [illegible] धन्यवाद करता हूँ कि जिन्होंने कागज की इस मँहगाई के दिनों में भी इस पुस्तिका के प्रकाशन का समस्त भार अपने ऊपर वहन किया। यदि हमें इस समय उनका कृपा-पूर्ण सहयोग न प्राप्त होता तो संभवतः यह पुस्तिका पाठकों के हाथों में न पहुँच पाती। उनका यह सद्भावनापूर्ण सत्सहयोग हिंदी के अन्य प्रकाशकों के लिए अनुकरणीय है।

३६७१ हाथीखाना
पहाड़ी धीरज, दिल्ली

क्षेमचन्द्र 'सुमन'
(सम्पादक)

पहला भाग : : जीवनी

समालोचक-शिरोमणि पं० पद्मसिंह शर्मा

(लेखक : *प्रो० हरिदत्त शर्मा शास्त्री*)

संसार पट कुविन्दं जग दण्ड कलश कुलालमीशानम् ।
सर्ग प्रलय सितासित कुसुम स्रङ् मालिनं वन्दे ॥

सुगृहीत नामधेय, समालोचक-शिरोमणि श्री पं० पद्मसिंह जी शर्मा का जन्म सम्वत् १९३३ फाल्गुन शुदि द्वादशी रविवार को हुआ था। आपके पिता श्रीयुत चौ० उमरावसिंह जी शर्मा नम्बरदार गाँव (नायक नगला) के मुखिया थे। आपका पैतृक पेशा जमीदारी व काश्तकारी था, आमदनी अच्छी थी, विद्या से प्रेम था, सन्तान को शिक्षित बनाने का विशेष ध्यान था, अतः मकान पर दो पण्डित रक्खे गये, एक मौलवी साहब, दूसरे संस्कृत के अध्यापक। हमारे चरित्रनायक ने थोड़े ही काल में उनसे सब कुछ ले लिया। विद्या की प्यास भड़की इटावा पहुंचे, वहाँ सन् १८९४ में श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के शिष्य श्री पं० भीमसेन जी वेदाचार्य से अष्टाध्यायी का अध्ययन किया। फिर वहां से काशी पहुँचे। श्री १०८ पूज्यपाद ऋषि-कल्प पं० काशीनाथ जी शास्त्री से दर्शनादि का अध्ययन किया।

यह बात सन् १८९४ की है। १९०४ में आपने गुरुकुल कांगड़ी में अध्यापन कार्य किया। उस समय श्रीयुत महात्मा मुन्शीराम जी ने पं० रुद्रदत्त जी शर्मा सम्पादकाचार्य के सम्पादकत्व में "सत्यवादी" निकाला था। हमारे चरित्रनायक भी तब वहीं थे। सम्पादन तथा हिन्दी-लेखन का "श्री गणेश" यहीं से हुआ। १९०८ के आरम्भ में 'परोपकारी' के सम्पादक होकर आप अजमेर चले गये। वहाँ आपने 'अनाथ रक्षक' का भी साथ-साथ सम्पादन किया। १९०९ से लेकर १९१७ तक आप महाविद्यालय ज्वाला-पुर में कार्य करते रहे। "भारतोदय" का सम्पादन भी आपने किया, जो मासिक से साप्ताहिक हो गया था। ग्राहक संख्या खूब बढ़ गई थी। कुछ काल तक आप महाविद्यालय-सभा के मन्त्री भी रहे, साथ-साथ पढ़ाते तो रहे ही। सन् १९१० में आपको पितृ-वियोग-विपत्ति का वज्र प्रहार सहना पड़ा। घर का सारा भार आप पर आ गया—म० वि० को छोड़कर जाना ही पड़ा। महा-

विद्यालय की हित-चिन्ता आप सर्वदा करते ही रहे। जब महाराजा श्री यशवन्त राव का इन्दौर में राज्याभिषेक हुआ तब आपको सम्मानपूर्वक ५००) भेंट किये गये तो वहाँ भी आपने महाविद्यालय को न भुलाया।

विद्यालय को भी एक अच्छी रकम दिलवाई, यदि सम्पादक जी ने कहीं निभकर काम किया या डटकर रहे या निर्वाह-मात्र लेकर काम किया तो सिर्फ महाविद्यालय में ही। नौकरी से आपको हार्दिक घृणा थी, स्वाभाविक द्वेष था। संवत् १९७५ विक्रमी में आप श्री बा० शिवप्रसाद गुप्त जी के अनुरोध से ज्ञान मण्डल काशी में पहुँचे, वहाँ उक्त मण्डल से प्रकाशित होने वाली पुस्तकों का सम्पादन करते रहे। श्री प्रोफेसर रामदास जी गौड़ एम. ए. तथा श्री लक्ष्मणनारायण जी गर्दे उन दिनों मण्डल के कार्यकर्त्ताओं में से अन्यतम थे। बिहारी की सतसई भूमिका भाग का प्रथम संस्करण भी यहीं से प्रकाशित हुआ। आश्विन संवत् १९७७ वि० में मुरादाबाद में होने वाले संयुक्त प्रान्तीय षष्ठ हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सम्मानित सभापति पद को सुशोभित किया। इस ही वर्ष आपको स्नेहमयी माताजी का भी वियोग दुःख सहना पड़ा। संवत् १९८० में बिहारी की सतसई पर मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक आपको मिला। न जाने कहां-कहां से आप को बुलावे आये, पर आप कहीं न गये।

मालवीय जी के कई बार कहने पर भी आप हिन्दू यूनिवर्सिटी में कार्य करने न पहुँचे, किन्तु दैवी चक्र बना। महात्मा मुन्शीराम के अनुरोध से गुरुकुल कांगड़ी जाना पड़ा। उत्तर दक्षिण ध्रुव का अभूत पूर्व मेल हो गया। इस प्रकार सम्पादक जी डेढ़ वर्ष तक काङ्गड़ी में हिन्दी साहित्य के प्रोफेसर रहे। साथ ही सम्वत् १९८५ में आपने मुजफ्फरपुर अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति पद को सुशोभित किया। पर प्रोफेसरी के फन्दे में सम्पादक जी कब फँसने वाले थे, मनोवृत्ति में जुगुप्सा आई और यह भी छोड़ दी। स्वतन्त्र हो गये। १९८६ में 'पद्म पराग' तथा 'प्रबन्ध मंजरी का प्रकाशन किया। सन् ३२ में हिन्दुस्तानी एकेडेमी के सदस्यों के अनुरोध से श्रीयुत सम्पादक जी का "हिन्दी उर्दू हिन्दोस्तानी" विषय पर निबन्ध पढ़ा गया। बस यही सम्पादक जी की अन्तिम और अनूठी कृति है। सम्पादक जी कहते थे कि जल्दी में लिखा है, छपाते समय दुबारा भूमिका सहित बढ़ाकर इसे छपायेंगे पर उस अचिन्त्य शक्ति को यह कब सह्य था।

हिन्दी प्रेमियों का यह कहाँ सौभाग्य था, यह लेख भूमिका-भरणालङ्कृत ही पाठकों को मिला और सन् १९३२ की ७ अप्रैल को प्रातः काल

भुवन भास्कर कर फैलाकर किसी को जगा और किसी को थपकियाँ देकर सुला रहे थे तब उन सोने वाले या कर-सोपान के सहारे सूर्य-मंडल में जाने वालों में सम्पादक जी भी एक थे। वे गये और बस, उनकी याद सहृदयों को खून के आँसू रुलाया करेगी। उनका व्यवहार उनका सौहार्द, उनकी आतिथेयी, उनका सौजन्य याद आया करेगा और हम सिर धुना करेंगे। सम्पादक जी का जन्म त्यागी ब्राह्मणों में हुआ था पर जाति-जन्म का जटिल जाल उन्हें बांध न सका था। उनका हृदय विशाल था। वे पक्के और सच्चे आर्य थे, पर अश्रद्धालु या भक्ति-विमुख न थे। सहृदयता की मूर्ति थे, समालोचना करना उनका स्वभाव-सा था, पर परिहास-रस में पगी हुई उनकी उक्तियाँ और वाक्यावली रोते को हँसाती थीं—उन्हें संगीत और काव्य से बड़ा प्रेम था, कविता सुनने का मर्ज था। जब वे गुरुकुल काङ्गड़ी से छुट्टी के दिनों में आते थे, तो ज्वालापुर महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों से सुन्दर सुन्दर सूक्तियाँ सुना करते थे। और नई-नई याद कराया करते थे, एक बार एक व्यक्ति ने उनके विषय में बहुत कुछ बुरा-भला पत्र में लिखा तो आपने उत्तर में यह श्लोक लिख भेजा—

"अस्मानवेहि कल मानलमाहतानाम्
येषां प्रचण्ड मुसलैरवदान तैव।'
स्नेहं विमुच्य सहसा खलतां प्रयान्ति
ये स्वल्प पीडन वशान्न वयं तिलास्ते ॥"

बस और कुछ न लिखा, तीन बार वे स्वयं क्षमा माँगने आ पहुँचे। सम्पादक जी को मौके पर फबने वाली संस्कृत, उर्दू, फारसी की कितनी सूक्तियाँ याद थीं इसका पता चलना बड़ा कठिन था। उनकी स्मरण-शक्ति भी गजब की थी, यदि भगवान् उन्हें कुछ दिन की और आयु देता तो हिन्दी प्रेमियों को अनेक अनमोल ग्रन्थ-रत्न प्राप्त होते।

दूसरा भाग :: संस्मरण

स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा

लेखक : श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

उन्नीस वर्ष हो गये (आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा का स्वर्गवास ७ अप्रैल सन् १९३२ को हुआ था) और इन उन्नीस वर्षों में भी हम लोग अपने प्रमाद के कारण उनका कोई भी स्मारक नहीं बना सके ! स्मारक बनाना तो रहा दूर, उनके ग्रन्थों का पुनर्मुद्रण भी नहीं करा सके ! 'पद्म-पराग' (द्वितीय भाग) जहाँ का तहाँ पड़ा हुआ है, उसके प्रथम भाग के द्वितीय संस्करण की नौबत अभी तक नहीं आई, जीवन-चरित भी नहीं लिखा जा सका ! यही नहीं, हम उन्हें भूलते भी जा रहे हैं ! पिछले १९ वर्ष में अध्यापकों तथा विद्यार्थियों की जो पीढ़ी तैयार हुई है, उसे आचार्य पं० पद्मसिंह जी की गद्यशैली तथा उनकी साहित्यिक तन्मयता का बहुत ही कम पता होगा। एक प्रोफेसर नामधारी महानुभाव ने जब कहा **"वही पद्मसिंहजी न, जो उर्दू कविताएं अपने लेखों में उद्धृत किया करते थे ?"** तब उनके अल्प ज्ञान तथा अपने अक्षम्य अपराध का अन्दाज़ हम लगा सके।

यह दुर्दशा है उस महान् साहित्यिक की स्मृति की, जिसने बीसियों ही लेखकों को लेखक बनाया था, पचासों ही कवियों को प्रोत्साहित किया था, सैकड़ों ही सभा-समितियों, उत्सवों तथा अधिवेशनों को अपने विस्तृत ज्ञान, सरस वार्तालाप तथा सजीव व्यक्तित्व से लाभान्वित किया था और जो जीवन-पर्यन्त दूसरों की कीर्ति-रक्षा के लिये चिन्तित रहा था ! स्वर्गीय शर्मा जी की स्मृति में तीन पत्रों के विशेषाङ्क अवश्य निकले थे—'विशाल भारत', 'सैनिक' तथा 'त्यागी' के, और उन्हें पढ़कर आज भी हम लोग यह जान सकते हैं कि उन्होंने कितने हिन्दी-लेखकों तथा कवियों को प्रभावित किया था।

स्वर्गीय प्रेमचन्दजी ने 'हंस' में लिखा था—

"शर्माजी जितने बड़े साहित्य-सेवी थे, उससे कहीं बड़े मनुष्य थे। आपसे मिलकर कभी जी नहीं भरता था। नये लेखकों को आप वह प्रोत्साहन देते थे, जो माता अपने लटपटे बालक को देती है। मेरे ऊपर तो उनकी असीम कृपा थी। 'सेवा-सदन' उपन्यास-क्षेत्र में मेरा पहला प्रयास था।

शर्माजी ने जिस तरह दिल खोलकर दाद दी, वह मैं भूल नहीं सकता। उस समय उनकी कठोर आलोचना ने मेरा अन्त कर दिया होता। उसके बाद जब-जब मुझे उनसे मिलने का सुअवसर मिला, इस तरह टूट कर गले लगाते थे कि चित्त उनके सौजन्य पर पुलकित हो उठता था। सरल जीवन और ऊँचे विचार की ऐसी मिसाल मुशकिल से मिलेगी। ······ आप में नवीन और प्राचीन का अभूतपूर्व मेल होगया था। क्या संस्कृत, क्या हिन्दी, क्या उर्दू, क्या फारसी—आप इन सभी साहित्यों के ज्ञाता थे। अकबर मरहूम के तो आप आशिक ही कहे जा सकते हैं। मैंने आपकी ज़बान से अकबर की सैकड़ों सूक्तियाँ सुनी हैं। आप उन पर मस्त हो जाते थे। हिन्दी में आप एक खास शैली के जन्मदाता हैं—जिसमें चुलबुलापन है, शोखी है, प्रवाह है और उसके साथ ही गाम्भीर्य भी। उनका पाण्डित्य उनके काबू में है। वह उस पर शहसवार की भाँति सवार होते हैं। उसकी लगाम ढीली नहीं करते, उसे बहकने नहीं देते। ····कौन जानता था कि हिन्दी-साहित्य का वह सूर्य अपने साहित्य-जीवन के मध्याह्न में यों अस्त हो जायगा!"

एक बार जब पंडित पद्मसिंहजी ने महाकवि अकबर की एक सूफियाना कविता की दाद एक लम्बा ख़त लिखकर दी, तो अकबर साहब फड़क गये। उन्होंने अपने पत्र में लिखाः—

"मुझको आज तक इसकी दाद नहीं मिली थी। दाद एक तरफ, एक साहब ने मुझसे फरमाया था कि 'मैं इस किते के मानी नहीं समझा।' वह साहब बहुत ज़ी-इल्म (विद्वान्) और खुद साहिबे-सखुन (कवि) थे, मैं ख़ामोश हो रहा। खुदा ने आपके लिये यह बात रखी थी कि इसका मतलब समझिये और दाद दीजिये। असल यह है कि आप साहिबे-दिल हैं। आपने अपनी ज़बान और मज़हब में फिलसफ़ा पढ़ा है और मज़ाके-तसव्वफ़ और हक़परस्ती आप में पैदा हो गई है। खुदा जाने किसने-किसने किन-किन मवाके (अवसर) पर किन अशआर की दाद दी, लेकिन यह तफ़सीली नज़र इस वज्द और लज्ज़त के साथ ग़ालिबन किसी ने नहीं की······"

"आपकी क़ाबलियत और सुख़नफहमी ने मुझको आपका आशिक़ बना दिया है, मेरे लिए दुआ फरमाया कीजिए, अब बज़ुज़ यादे-खुदा और जिक्रे आख़रत के कुछ जी नहीं चाहता, लेकिन इस रंग के सच्चे साथी नहीं मिलते, आप बहुत दूर हैं।" इसी प्रकार संस्कृत के महान् विद्वान् और बाणभट्ट की शैली पर गद्य लिखने वाले पं० हृषीकेश भट्टाचार्य शास्त्रीजी की संस्कृत रचनाओं के विषय में लिखते हुए शर्माजी ने जिस गुणग्राहकता का परिचय दिया

था उससे स्वयं शास्त्रीजी अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। शास्त्रीजी के बड़े-से-बड़े शिष्य, उदाहरणार्थ महामहोपाध्याय श्री प्रमथनाथ तर्कभूषण, श्री पञ्चानन तर्करत्न, महामहोपाध्याय श्री गणनाथ सेन प्रभृति, जिस पुण्य कार्य को न कर सके उसे स्वयं पं० पद्मसिंहजी ने कर दिखाया! अर्थात् उन्होंने शास्त्रीजी द्वारा सम्पादित 'विद्योदय' के पुराने लेखों का संग्रह और सम्पादन करके 'प्रबन्ध-मंजरी' के नाम से प्रकाशित कर दिया। वही वास्तव में उनका सच्चा श्राद्ध था।

इसी प्रकार ब्रज-कोकिल पं० सत्यनारायण कविरत्न को भी स्वर्गीय शर्माजी ने बहुत प्रोत्साहित किया था। कविरत्नजी की 'सरोजिनी षट्पदी' नामक कविता की जो प्रशंसा उन्होंने की थी, उसे कविरत्नजी ने अपने सार्टीफिकेट के लिफाफे में रख छोड़ा था।

कविवर स्वर्गीय नाथूरामजी शंकर शर्मा के तो वे अनन्य भक्त थे। अपने एक पत्र में उन्होंने मुझे लिखा था:—

"मैं अभी हरदुआगंज शंकरजी से मिलने गया था……आज ही मकान पर लौटा हूँ। हिन्दी-लेखकों के जीवन-चरित बेशक लिखे जाने चाहिए। आप पाठकजी (पं० श्रीधर पाठक) की जीवनी लिखिये और मैं शंकरजी की लिखूँगा। मुझे जीवनी लिखनी नहीं आती। इस कूचे में कभी क़दम रखा ही नहीं, पर शंकरजी का पवित्र चरित्र लिखकर अपनी कलंकित क़लम के पापों का प्रायश्चित्त करूँगा। परमात्मा मुझे शक्ति दे कि मैं यह काम कर सकूँ। एवमस्तु।" पूज्य शंकरजी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अनुराग-रत्न' 'काव्य-कानन-केसरी' पं० पद्मसिंहजी को ही समर्पित की थी।

अनेक मित्रों ने, जिनमें पं० पद्मसिंहजी भी सम्मिलित थे, बहुत आग्रह किया कि 'अनुराग-रत्न' का समर्पण किसी धनी-मानी महानुभाव को किया जाय, जिससे कुछ आर्थिक लाभ भी हो, पर कवि जी ने यह बात एक क्षण के लिए भी स्वीकार न की। उन्होंने यही कहा **"मैं अपना प्रचुर परिश्रम एक काव्य-कलाविद को ही अर्पण करूंगा और मेरी राय में पं० पद्मसिंहजी शर्मा इसके लिए सर्वश्रेष्ठ हैं।"**

कविवर मैथिलीशरण जी गुप्त को उन दिनों जब कि वे 'भारत-भारती' लिख रहे थे, पंडित पद्मसिंह ने काफी प्रोत्साहित किया था।

बन्धुवर हरिशङ्करजी शर्मा, श्रीरामजी शर्मा और इन पंक्तियों का लेखक, हम तीनों तो शर्माजी के इतने ऋणी हैं कि जीवन-भर उऋण नहीं हो सकते। हम लोगों के लिए तो वे पितृ-तुल्य ही थे।

बहुत-से लोगों को इस बात का पता न होगा कि हमारे राष्ट्रपति श्रद्धेय

बाबू राजेन्द्रप्रसादजी का प्रथम लेख सम्भवत: पं० पद्मसिंह जी ने ही 'भारतोदय' में छापा था। पूज्य बाबूजी का १४ जनवरी सन् १६११ का एक पत्र, जो उन्होंने शर्माजी को भेजा था, अभी सुरक्षित है। उसे हम यहां उद्धृत करते हैं —

७, १ वेचू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता
तारीख १४, शु० पौष १६६७

परम पूज्यनीय श्रद्धेयवर,

प्रणतयः सादरम् सस्नहेम् !

कृपा-पत्र पाकर अत्यन्त अनुग्रहीत हुआ। आपने जो मुझे लोकोत्तर विरुदावालियों से विभूषित किया है यह केवल आपकी कृपा और दाक्षिण्य का अविकल प्रमाण है। मैं तो स्वयं अपने को अत्यन्त अल्पज्ञ जानकर आपकी सहायता का सदैव अभिलाषी हूँ। बात असल यह है कि मुझे इतने शब्दों से भूषित कर आप सहायता देने के परिश्रम से अलग नहीं हो सकते। 'सरस्वती' में जो लेख देने की आज्ञा की गई,सो अनुल्लंघनीय न होने पर भी लेख के असामर्थ्योपहत होने से विलम्बसाध्य होगी। 'सतसई संहार' लिखकर आपने 'सरस्वती' के पाठकों का जो आशीर्वाद ग्रहण किया है सो उसकी पुष्टि मेरे-से अल्पज्ञ के लेख से कैसे हो सकती है। प्रथम तो ऐसा विषय नहीं सूझता जिस पर हिन्दी-रसिकों का अनुराग हो, द्वितीयत: हिन्दी लेख में भी सामर्थ्य नहीं। आप कुछ विषय निर्देश करें तो कुछ यत्न हो। समाज-संशोधन वाला लेख आपको इतना पसन्द होगा, यह मुझे कभी धारणा नहीं थी। यदि उधर 'भारतोदय' कृतार्थ हुआ तो इधर मैं भी कृतार्थ हुआ। आशा है अपने समुचित उपदेशों से आप मुझे सदा कृतार्थ करते रहेंगे।

आपका परम-सेवक
राजेन्द्र

अधिक उद्धरण देने की आवश्यकता नहीं। जो व्यक्ति एक साथ ही पं० हृषीकेश भट्टाचार्य और महाकवि अकबर, श्रद्धेय बाबू राजेन्द्र प्रसाद और राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द और सत्यनारायण इन सबको प्रोत्साहित कर सकता था—योग्यतापूर्वक इन सबकी रचनाओं की दाद दे सकता था — निस्संदेह एक असाधारण विद्वान् तथा सहृदयशिरोमणि होना चाहिये ?

अब प्रश्न यह है कि उन सहृदय-शिरोमणि पं० पद्मसिंह जी की कीर्ति-रक्षा के लिए क्या किया जाय ?

हमारी समझ में सर्वोत्तम कार्य तो यह होगा कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

उनकी समस्त रचनाओं को अपने यहां से प्रकाशित करे । इसके लिए वह स्वर्गीय शर्माजी के सुपुत्र भाई रामनाथ शर्मा से पत्र-व्यवहार कर सकता है। हमारा विश्वास है कि हमारे इस प्रस्ताव का समर्थन श्रद्धेय पं० अम्बिका-प्रसाद जी वाजपेयी, बंधुवर वियोगी हरि जी, कविवर श्री माखनलाल जी चतुर्वेदी, श्री पं० अमरनाथ जी झा, श्रद्धेय पराड़कर जी, पूज्य टंडन जी तथा सम्मेलन के अन्य सभापतियों द्वारा हो जायगा।

दूसरा काम है स्वर्गीय शर्मा जी के जीवन-चरित्र के लिखने का और इसे हम स्वयं एक वर्ष के भीतर लिख देना चाहते हैं।

'पद्म-पराग' (द्वितीय भाग) के सम्पादन का कार्य भी तुरन्त हाथ में लिया जाना चाहिये। यदि सम्मेलन स्वीकार करे तो स्वर्गीय शर्माजी के सौ-सवा सौ चुने हुए पत्रों का संग्रह भी उसे यथा-सम्भव शीघ्र ही दिया जा सकता है।

हमारा विश्वास है कि स्वर्गीय शर्मा जी की समस्त रचनाओं के प्रकाशित होने पर ही हम लोग उनकी साहित्य-सेवा का अनुमान लगा सकेंगे। पर जैसा कि स्व० प्रेमचन्द जी ने कहा था **'शर्मा जी जितने साहित्य-सेवी थे उससे कहीं बड़े मनुष्य थे'** सो उनके असाधारण मनुष्यत्व को प्रकट करने के लिए जीवन-चरित्र का प्रकाशित होना अनिवार्यतः आवश्यक है। अनेक झंझटों में व्यस्त रहने के कारण हम इस श्राद्ध को अभी तक नहीं कर सके। तदर्थ हम स्वर्गीय शर्माजी के भक्तों, मित्रों तथा शिष्यों और प्रशंसकों के सम्मुख कर-बद्ध क्षमा-प्रार्थी हैं।

आचार्य पण्डित पद्मसिंह शर्मा

लेखक : श्री श्रीराम शर्मा

पंडित पद्मसिंह शर्मा का विद्वत्तापूर्ण साहित्य आज भी सब लोग बड़ी रुचि से पढ़ते हैं और आगे भी इसी प्रकार पढ़ा जाता रहेगा। हमें दुःख तो इस बात का है कि आधुनिक हिन्दी के इतिहास-लेखकों ने उनके साथ प्रायः न्याय नहीं किया। एक इतिहास-लेखक ने तो यह फतवा दिया है, **"उनकी भाषा उछलती-कूदती, महफ़िली ढंग की होती थी। वे साहित्य के पारखी न थे। समालोचक तो वे थे ही नहीं।"** हमें आश्चर्य तो यह है कि शर्मा जी के सम्बन्ध में ऐसी ऊल-जलूल सम्मति देने वाले वे इतिहास-लेखक हैं, जिन्होंने कदाचित् उनकी लिखी एक भी पुस्तक अच्छी तरह नहीं पढ़ी। हमने स्वयं एक

विद्वान् इतिहास-लेखक से जानना चाहा, 'महाशय आपने शर्मा जी के सम्बन्ध में जो पंक्तियाँ लिखी हैं, उनका आधार क्या है ?' वे बोले, "पुस्तक तो कोई नहीं पढ़ी । अमुक इतिहास-लेखक ने उनके सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वही हमने दस-पाँच शब्द अदल-बदलकर लिख दिया है।" आप कोई हिन्दी-साहित्य-इतिहास-पुस्तक उठा लीजिये । सब में शर्मा जी के सम्बन्ध में प्रायः एक-सी ही सम्मति लिखी पायंगे । कुछ शब्दों का हेर-फेर अवश्य होगा । यह है हमारे हिन्दी-साहित्य के इतिहास की लेखन-प्रणाली और ऐसी है हमारी राष्ट्रभाषा की अनुसंधान-शैली । हमने एक बार हिन्दी के एम० ए० के कुछ विद्यार्थियों के सामने श्री पद्मसिंह शर्माजी की विद्वत्ता और लेखन-शैली की प्रशंसा कर उनके विशाल व्यक्तित्व का वर्णन किया । विद्यार्थी बड़े प्रभावित हुए । परन्तु एक सप्ताह भी न हुआ था कि उन्होंने दो-तीन इतिहास हमारे सामने रखते हुए कहा, "पण्डितजी, आपने तो शर्माजी की उस दिन बड़ी प्रशंसा की थी, परन्तु इन पुस्तकों में तो उनकी भाषा को 'उछलती-कूदती' और 'महफिली ढंग की' बताया गया है । उन्हें साहित्य का आलोचक और पारखी भी नहीं माना ।" हमने वे स्थल बड़े ध्यान से पढ़े और लेखकों की बुद्धि पर बड़ा क्रोध आया और तरस भी । तरस इसलिए कि दस-बीस दिनों में कोर्स के लिए किताबें लिखकर अपना पारिश्रमिक सीधा करने वालों से और आशा भी क्या की जा सकती है । एक दिन तो हमारे आश्चर्य और दुःख की सीमा न रही जब एक प्रसिद्ध कालेज के एक हिन्दी-अध्यापक ने श्री पं० पद्मसिंह शर्मा विषयक अपनी अनभिज्ञता बताई और बहुत समझाने-बुझाने और याद दिलाने पर भी वे इतना ही कह सके "···हाँ-हाँ, पद्मसिंहजी थे । वे उर्दू-वुर्दू भी जानते थे ।" यह है हमारे अध्यापकों की मनोवृत्ति और अध्ययन-शीलता, जो साहित्य-महारथी पं० पद्मसिंह शर्मा तक को नहीं पहचानने देती, उस संस्कृत, हिन्दी, फारसी और उर्दू के दिग्गज विद्वान् को मामूली उर्दू-वुर्दू जानने वाला कहकर सन्तोष करती है ।

पं० पद्मसिंह शर्मा संस्कृत-साहित्य के धुरन्धर विद्वान्, उर्दू-फारसी के ऊँचे आलिम और हिन्दी के नवयुग-निर्माता थे । उनकी संस्कृतज्ञता के सम्बन्ध म काशी के महान् पण्डितों से पूछिए । फारसी-उर्दू की जानकारी का हाल 'हाली', 'अकबर' 'चकबस्त' और 'इकबाल' बतायँगे, जो उनकी इल्मियत से अवाक् रह गये थे । उर्दू साहित्य को नए साँचे में ढालने वाले प्रोफेसर मोहम्मद हुसेन आजाद उनकी लियाकत के क़ायल थे । शर्माजी अपनी एक अद्भुत लेखन-शैली लेकर अवतरित हुए थे, जो उन्हीं के साथ चली गई ।

'बिहारी-सतसई' म प्राणों का संचार करने वाले शर्माजी ही थे, उन्होंने ही सबसे प्रथम हिन्दी में तुलनात्मक आलोचना-पद्धति की नींव डाली। एक बार बड़ा मज़ा रहा। शर्माजी दिल्ली में उर्दू के महान् साहित्यकार और कवि श्री सूरजनरायन 'महर' से मिलने गए। परिचय के दौरान में परिचय कराने वाले मित्र ने यह भी कह दिया कि शर्माजी ने 'बिहारी-सतसई' पर बड़ा सुन्दर भाष्य लिखा है। 'बिहारी-सतसई' का नाम सुनते ही 'महर' साहब आवेश में आकर बोले, **'उस गन्दी, भद्दी और फ़ुहश किताब पर जो छूने के काबिल भी नहीं है।** शर्माजी नें सतसई के सम्बन्ध में ये वेजोड़ वाक्य बड़े धैर्य से सुने और सहन किये। फिर साधारण बातचीत होती रही। उर्दू साहित्य का जिक्र छिड़ा।

सत्यनारायण के मन्दिर में, जहाँ शर्माजी ठहरे हुए थे और सतसई भाष्य का द्वितीय संस्करण छपा रहे थे, आकर शर्माजी ने अपनी लिखी बिहारी सतसई की भूमिका 'महर' साहब के पास भेजी और उस पर लिख दिया, **"अगर इस किताब के कुछ सफे जनाब पढ़ेंगे तो ममनून हूँगा।"** 'महर साहब' के पास भूमिका का भाग पहुँच गया। एक दिन आश्चर्य की सीमा न रही जब वे अपनी लकुटी टेकते-टेकते सत्यनारायण के मन्दिर में पहुँचे और बड़ी विनम्रता से बोले··· **"मैं आपकी सारी किताब एक साँस में पढ़ गया। मैंने उस दिन 'सतसई' को गन्दी और फ़ुहश बताया था, आज अपनी उस बेअदबी, गुस्ताखी और बदलियाकती के लिए माफी मांगने आया हूँ। मुझे अफसोस है अब तक मैंने आपकी यह पुस्तक नहीं पढ़ी। मैं तो आपकी इल्मियत और इतने बढ़िया स्टाइल के लिए धन्यवाद और मुबारकबाद देने आया हूँ।"** 'महर साहब' उन दिनों शर्माजी के अनन्य भक्त बन गये और जिस सतसई को उन्होंने फ़ुहश और गन्दी किताब बताया था, उसी पर बड़ी सुन्दर सम्मति लिखी, जो द्वितीय संस्करण में छपी है।

चकबस्त साहब और महाकवि अकबर ने एक बार पंडितजी से कहा था **'आप-जैसा इल्मदोस्त हमें दूसरा नहीं मिला।'** हाली और इकबाल की भी यही राय थी। हिन्दुस्तानी एकेडेमी में जब शर्माजी ने अपना निबन्ध पढ़ा तब उस मीटिंग के सभापति जस्टिस सुलेमान ने शर्माजी की लेखन-शैली और विद्वत्ता की भरपेट दाद दी थी। आचार्य द्विवेदीजी शर्माजी की लेखनी के बड़े प्रशंसक थे। हिन्दी की ही भाँति शर्माजी की संस्कृत और उर्दू लिखने की भी बड़ी प्रौढ़ और आकर्षक शैली थी। 'ज़माना' के सम्पादक मुन्शी दयानारायण निगम, मुन्शी प्रेमचन्द, ख्वाजा हसन निज़ामी आदि शर्माजी की उर्दू लेखन-शैली के बड़े भारी मद्दाह थे। आपकी संस्कृत लेखनशैली भी बड़ी प्रभावपूर्ण और

अद्‌भुत थी । एक दार्शनिक ग्रंथ पर शर्माजी की लिखी एक संस्कृत भूमिका को पढ़कर स्वयं उनके संस्कृत-गुरु महान् विद्वान् श्री पं० काशीनाथ शास्त्री ने कहा था, **'ऐसी सुन्दर और सरल संस्कृत लिखना पद्मसिंह का ही काम है। मैं स्वयं उस शैली पर नहीं लिख सकता।'** पं० पद्मसिंह शर्मा काव्य-साहित्य के साधारण विद्वान् न थे । संस्कृत, फारसी, हिन्दी और उर्दू का ऐसा कोई काव्य-ग्रंथ न था जिसका उन्होंने अध्ययन न किया था और जिसे वे दूसरों को पढ़ा न सकते थे । पंडितजी से बड़े-बड़े आचार्य और विद्वान् साहित्य पढ़ने जाते थे उनका पुस्तकालय विविध भाषाओं के ग्रन्थों का भण्डार है । वे रात-रात भर पढ़ते और लिखते थे । चिट्ठियाँ लिखने में तो वे हिन्दी में अद्वितीय थे, इस दिशा में उन तक कोई नहीं पहुँच सका । वे नवयुवक लेखकों और कवियों को प्रोत्साहन भी दिल खोलकर देते थे । किसी की कोई रचना पसन्द आई और तुरन्त पत्र लिखकर उसे दाद दी, फिर वह रचना किसी छोटे-से-छोटे विद्यार्थी की ही क्यों न हो । वे ऐसे लेखकों और कवियों को दाद देने प्रायः उनके घर पर भी पहुँचते थे । कहाँ तक लिखें पं० पद्मसिंहजी असली अर्थ में साहित्याचार्य और वास्तव में साहित्य-महारथी थे । वे नये युग के प्रवर्तक और अभिनव हिन्दी के निर्माताओं में से थे । उनके एक-एक गुण पर पृथक्-पृथक् निबन्ध लिखने की आवश्यकता है । जिस महान् साहित्यकार का इतना अधिक महत्त्व है, उसके सम्बन्ध में हिन्दी के इतिहासकार कितने कंजूस और संकीर्ण हैं, यह बात उनकी लिखी सम्मतियों से प्रकट है । क्या यह पक्षपातपूर्ण प्रवृत्ति हिन्दी को कभी ऊँचा उठने देगी ? क्या यह नकलची इतिहास-लेखक सचमुच इतिहासकार कहे जाने योग्य हैं ?

आचार्य श्री पं० पद्मसिंह शर्मा के सम्बन्ध में जो कुछ ऊपर लिखा गया है, उसका उद्देश्य उनकी प्रशंसा करना नहीं है । कवि या साहित्यकार की प्रशंसा तो उसकी रचना से ही होती है । फिर स्वर्गीय आत्माओं के लिए प्रशंसा या अप्रशंसा कोई अर्थ ही नहीं रखती । इन पंक्तियों के लिखने से हमारा प्रयोजन यह है कि जिन साहित्यकारों की सहृदय काव्य-मर्मज्ञों और विद्वानों में इतनी श्रद्धा और प्रतिष्ठा है, उनके सम्बन्ध में 'नकलची' इतिहास-लेखक कितने कंजूस और संकीर्ण हैं । इतिहासकार का कर्त्तव्य महान् है । उसे न्याय-मूर्ति की तरह सत्य घटना का ही उल्लेख करना चाहिए, परन्तु यहाँ तो अजीब हालत है । अपने मित्र, भक्त, श्रद्धेय, शिष्य और साथियों की तो ये नामधारी इतिहास-लेखक प्रशंसा करते नहीं अघाते, परन्तु जो प्रशंसा के

सचमुच पात्र हैं, उनकी जान-बूझकर उपेक्षा की जाती है या बेढंगे तौर से उनका चित्रण होता है ।

असल में बात यह है कि प्रारम्भ में जिन दो-तीन विद्वानों ने आधुनिक हिन्दी-साहित्य की रूप-रेखा लिखी उन्होंने बड़ा श्लाध्य काम किया। परन्तु यह काम बहुत जल्दी में हुआ । फिर उस पर विचार या अनुसन्धान करने के लिए सम्भवतः उन लेखक महानुभावों को समय ही नहीं मिला । नकलची इतिहास-लेखकों ने उन्हीं के आधार पर बिना और अधिक छान-बीन किये मक्खी-पर-मक्खी मारना शुरू कर दिया । अपनें जान-पहचान के इष्ट मित्र या भक्त शिष्य मिले तो उनको भी टाँक दिया और पन्द्रह-बीस दिन में एक वृहद् इतिहास-ग्रन्थ तैयार कर के बेचारे प्रकाशक के मत्थे मढ़ दिया । कुछ टके मिल गये और इतिहास-लेखक की श्रेणी में भी जा बैठे । चुपड़ी और दो-दो । हमने पं पद्मसिंह शर्मा को अधिक समीप से देखा है । उनके सम्बन्ध में हम बहुत-सी बातें जानते थे, अतएव उनमें से कुछ का संकेत कर दिया है। ऐसे और भी साहित्यकार हैं जिनकी इतिहास-लेखकों ने उपेक्षा और अवहेलना की है । हम इसे इतिहासकारों का अन्याय कहते हैं । हिन्दी में आधुनिक युग के एक सर्वांग-सम्पन्न इतिहास की आवश्यकता है, जिसमें साहित्यकारों का पूरा स्वरूप दिखाया जाय और उनके अच्छे-बुरे या साधारण होने का निर्णय स्वयं पाठकों पर छोड़ा जाय । रीडरबाजी के नाम पर 'नकलची' इतिहास-लेखकों द्वारा को अनर्थ हो रहा है, उसका प्रभाव भावी सन्तान पर अच्छा नहीं पड़ेगा । कुछ दिनों बाद ये इतिहास 'यार-दोस्तों' के स्मृति-पत्रक-मात्र बन जायंगे और ये वास्तविकता से अत्यन्त दूर होंगे ।

तीसरा भाग : कृतित्व

शर्मा जी की भाषा और शैली

लेखक : श्री किशोरीदास बाजपेयी

हिन्दी-साहित्य के सर्वोत्कृष्ट समालोचक स्वर्गीय पं० श्री पद्मसिंह जी शर्मा की भाषा में सजीवता और शैली में चुटीलापन है। वे काव्यालोचक थे। काव्य में भी, विशेषतः शृंगारमयी रचना की परख आपने की है। आपकी भाषा शृंगार के अनुरूप है और शैली उसका पोषण करती है। यही कारण है कि साहित्य-संसार ने एक स्वर से उसकी प्रशंसा की है। उनकी उस आलोचना पर न्यौछावर है—'विहारी की सतसई' का शर्मा जी के 'संजीवन भाष्य' के कारण 'अगनित बढ़चो उदोत।' जिन्होंने कभी आँख उठाकर 'सतसई' की ओर न देखा था और न देखना चाहते थे, वे भी उसके पक्के हिमायती बन गए; 'सञ्जीवन' ने अपना काम कर दिया। अँगूठी से बहुत ज्यादा कीमत का उसमें जड़ा हुआ नग निकला, जिसने सबका ध्यान उधर आकर्षित कर लिया। परस्पर एक ने दूसरे की छटा बढ़ाई। लोगों की यह आशंसा पूरी हुई कि 'रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन।' विहारी को अनुरूप ही समालोचक मिले। यह कितने सौभाग्य की बात है।

संसार में सब तरह के जीव होते हैं। किसी को कुछ अच्छा लगता है और किसी को कुछ। किसी एक ही वस्तु से सबका प्रसन्न होना प्रायः असम्भव है। फलतः शर्मा जी की समालोचना-शैली और भाषा भी हिन्दी-साहित्य के कुछ विद्वानों को पसन्द नहीं पड़ी। कुछ समालोचक-पुंगवों ने स्वर्गीय शर्मा जी की भाषा और शैली को अच्छा नहीं बतलाया है। वे लिखते हैं :—

"शर्मा जी की समालोचना-शैली बड़ी ही व्यंग्यमयी हो गई है और इसमें कवियों की प्रशंसा में 'वाह वाह' कहने का उर्दू ढंग पकड़ा गया है। यदि शर्मा जी कुछ अधिक गम्भीरता और शिष्टता साथ लिये रहते तो अच्छा होता। कदाचित् उनकी उछलती, कूदती, फुदकती हुई भाषा-शैली के लिए यह सम्भव न था।"

दुःख और आश्चर्य का विषय है कि जिस व्यंग्य को कविता का सर्वस्व

कहा गया है, जिस पर सब साहित्य-ग्रन्थ कुर्बान हैं, उसे ही ये समालोचक नापसंद करते हैं, उस पर क्या कहा जाय ?

उनका यह भी कहना है कि शर्मा जी अपने को यदि और अधिक गम्भीर रखते, तो अच्छा होता। मैं कहता हूं, यदि ऐसा होता तो बुरा होता। उस दशा में 'संजोवन' संजीवन न रह जाता, कुछ और ही हो जाता। आज तक कितनी काव्यालोचनाएँ प्रकाशित हुईं ? उनमें से कौन ऐसी है, 'संजीवन' के अलावा, जिसने अपने आलोच्य की ओर लोगों को आकर्षित किया हो और इतनी चमक-दमक पाई हो? काव्य—और शृंगारात्मक काव्य—कुछ दर्शन-शास्त्र तो है ही नहीं, जिसकी आलोचना में गम्भीरता और शैली में रोना स्वीकार किया जाय ! प्रतिपाद्य या आलोच्य-विषय के अनुसार भाषा और शैली का होना आवश्यक है। यदि आप किसी वेदान्त-ग्रन्थ की आलोचना करते हैं, तो गम्भीरता की आवश्यकता है; पर कविता की आलोचना में यह गम्भीरता अत्यन्त फीकापन ला देगी, विशेषत: शृंगार और हास्य रस की कविता के विषय में। यही सब सोच-समझ कर तो साहित्य-ग्रन्थों में प्राचीन आचार्यों ने लिखा है कि प्रतिपाद्य विषय आदि के अनुसार भाषा और शैली बदलनी चाहिए। सदा एक शैली का स्वीकार साहित्य में हानिकर है। उक्त आलोचकों की गम्भीरता सर्वथा अवांच्छनीय है।

उन्होंने शर्मा जी की भाषा को उछलती-कूदती और फुदकती हुई बतलाया है। यही तो चाहिए। यही तो सजीव भाषा है। मुमूर्षु निर्जीव भाषा का कविता-क्षेत्र में क्या काम ? उसे कौन पूछेगा ? परीक्षा के विद्यार्थी भले ही जबर्दस्ती छाती पर लाद लें। और कोई पूछने का नहीं।

कवियों की प्रशंसा में 'वाह वाह' के उर्दू ढंग को इन आलोचकों ने अच्छा नहीं समझा है। अपनी समझ ! सहृदय लोग तो रस-सिद्ध कवि की उत्कृष्ट कविता की सहस्र-मुख होकर प्रशंसा करते हैं, और उनके मुख से ही नहीं, नेत्रों से भी 'वाह' (वा: नीर, पाष्य) निकल पड़ता है। 'गुणाधिके वस्तुनि मौनिता' उनके हृदय में चुभती है। तभी तो वे सहृदय हैं। ये आलोचक किसी की प्रशंसा में 'वाह' न निकालें, तो उनकी इच्छा !

जो कुछ भी हो, शर्मा जी के जोड़ का समालोचक अभी तक हिन्दी-संसार में पैदा नहीं हुआ है।

श्री शर्माजी का रचना-कौशल

लेखक : प्रो० नन्ददुलारे बाजपेयी

पण्डित पद्मसिंह शर्मा की समीक्षा में सुधार का मुख्य विषय रचना-कौशल था। रीत-काव्य में, जो शर्मा जी के समय का प्रचलित काव्य-प्रवाह था, कौशल की ही प्रधानता थी। उनके समय के नव निर्माण में इसी की कमी थी। फलतः शर्मा जी की समीक्षा का मुख्य आधार काव्य-कौशल बना, जो सामयिक साहित्यिक स्थिति का स्वाभाविक परिणाम था। नवीन सुधार का विषय काव्य-आत्मा नहीं, काव्य-शरीर था, यह भी समय को देखते हुए अनिवार्य ही था।

काव्य-शरीर के अन्तर्गत भाषा, पद-प्रयोग, उक्ति-चमत्कार और चित्रण-कौशल आदि आते हैं, इन्हीं की ओर शर्मा जी की दृष्टि गई। यदि यह प्रश्न किया जाय कि काव्य-शरीर और काव्य-आत्मा में पारस्परिक सम्बन्ध क्या है, तो मोटे तौर पर यही कहा जा सकता है कि सूर और तुलसी का काव्य-आत्मा स्थानीय और बिहारी तथा देव का काव्य-शरीर स्थानीय। पंडित पद्मसिंह शर्मा की समीक्षा काव्य-शरीर का आग्रह करने चली, देव और बिहारी को आदर्श बनाकर आगे बढ़ी।

सुधार की पहली सीढ़ी शरीर सम्बन्धिनी ही होती है, और उसका अपना मूल्य भी कुछ कम नहीं होता। अंग्रेजी की उक्ति है कि शुद्ध शरीर में ही शुद्ध आत्मा रह सकती है, यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं कि शुद्ध शरीर में सदैव शुद्ध आत्मा ही निवास करती है। शर्मा जी ने काव्य-शरीर की शुद्धि के सभी पहलू स्पष्ट कर दिए और उसकी समस्त सम्भावनाएं उद्‌घाटित कर दीं। काव्य-समीक्षा के लिए उनका कार्य अपनी सीमा में महत्त्व रखता है और यह सिद्ध करता है कि शरीर के सुधारने से ही मन और आत्मा नहीं संवरते।

नवीन काव्य-धारा के सम्बन्ध में शर्मा जी का मत मुक्तक काव्य के-बिहारी और देव आदि के—काव्य प्रतिमानों से ही प्रभावित था। नवीन कविता किस आदर्श को ग्रहण करे, इस विषय पर उनके संस्कार रीति-शैली से ही प्रचलित हुए थे। फलतः नवीन काव्य की गति-विधि पर न तो उनकी सम्मति का विशेष मूल्य था और न प्रभाव ही। हिन्दी के लिए उन्होंने हाली का आदर्श ग्रहण करने की सिफारिश की, किन्तु नवीन कविता उस सांचे में नहीं बैठ सकती थी!

द्विवेदी युग का नवीन काव्य आदर्शात्मक काव्य था। उसके मूल में नवयुग की भावना का विन्यास था। छायावाद की कविता तो और भी अधिक आत्माभिमुखी थी। उसके लिए देव और बिहारी के साँचे कहाँ तक ठीक उतर सकते थे; यह आज का सामान्य व्यक्ति भी आसानी से समझ सकता है।

इतिहासकारों की दृष्टि में

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

"......पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी ५८ एक अच्छी आलोचनात्मक पुस्तक निकाली। इसमें उस साहित्य-परम्परा का बहुत ही अच्छा उद्घाटन है, जिसके अनुकरण पर बिहारी ने अपनी प्रसिद्ध सतसई की रचना की। 'आर्य्या सप्त-शती' और 'गाथा सप्तशती' के बहुत-से पद्यों के साथ बिहारी के दोहों का पूरा मेल दिखाकर शर्मा जी ने बड़ी विद्वत्ता के साथ एक चली आती हुई साहित्यिक परम्परा के बीच बिहारी को रखकर दिखाया। किसी चली आती हुई साहित्यिक परम्परा का उद्घाटन साहित्य-समीक्षक का एक भारी कर्त्तव्य है। हिन्दी के दूसरे कवियों के मिलते-जुलते पद्यों की बिहारी के दोहों के साथ तुलना करके शर्मा जी ने तारतम्यिक आलोचना का शौक पैदा किया। इस पुस्तक में शर्मा जी ने उन आक्षेपों का भी बहुत-कुछ परिहार किया, जो देव को ऊँचा सिद्ध करने के लिए बिहारी पर किये गए थे। हो सकता है कि शर्मा जी ने भी बहुत-से स्थलों पर बिहारी का पक्षपात किया हो, पर उन्होंने जो कुछ किया है, वह अनूठे ढङ्ग से किया है। उनके पक्षपात का भी साहित्यिक मूल्य है।"

बाबू श्यामसुन्दरदास

"हिन्दी के कवियों पर आलोचनात्मक लेख और पुस्तक लिखने वालों में पण्डित पद्मसिंह शर्मा का नाम उल्लेख योग्य है। हिन्दी में तुलनात्मक आलोचना-शैली का आविष्कार पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने किया था। वह वस्तुतः एक नई चीज थी। ......शर्मा जी की शैली का अनुसरण अन्य लोगों ने न किया हो, यह दूसरी बात है, परन्तु यह शैली दृढ़ हो रही है।"

मिश्रबन्धु

"......पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी की भली-बुरी कैसी भी प्रशंसा करने का बीड़ा ही उठाया था। कोई भी प्रमाण कैसा भी शिथिल हो, किन्तु

शर्मा जी के लिए देव कवि को निन्द्य तथा बिहारी को स्तुत्य ठहराने को वह अलम् होता था। बिहारी पर जो आपनें बड़ा ग्रन्थ प्रचुर परिश्रम से बनाया, वह श्लाघ्य होने पर भी अनुचित विचारों के भारी समारोह से बहुत कुछ दूषित है। शर्मा जी प्रबल लेखक तथा श्रमकर्ता आलोचक थे, किन्तु हम उन्हें समालोचक नहीं कह सकते, क्योंकि हठवाद उनके विचारों में कुछ अधिकता से है। हिन्दी में उर्दू कवियों का कुछ ज्ञान शर्मा जी लाये।......"

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

"श्री पद्मसिंह शर्मा ने तुलनात्मक आलोचना को जन्म दिया। उनकी तुलनात्मक आलोचना ने, 'देव' बड़े हैं कि 'बिहारी' बड़े हैं, इस प्रकार के झगड़े लाकर खड़े किये। आपकी शैली अधिकतर व्याख्यात्मक है। आपके लिखने का ढङ्ग प्रवाहपूर्ण और आलोचना का ढङ्ग सजीव है।"

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

"आलोचना के क्षेत्र में पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने एक अनोखी ही शैली का प्रदर्शन किया। इस शैली की विशेषता थी—एक की विशेषता को परखकर दूसरे की विशेषताओं को दिखाना। एक प्रकार की तुलनात्मक शैली का जो आकर्षक रूप शर्मा जी ने हिन्दी में उपस्थित किया, वह चटपटा तो अवश्य था, पर गम्भीर न था। इसमें सन्देह नहीं कि उसमें एक नवीन अनुभूति का लिखित रूप था, और उसके बाद उसी ढङ्ग पर कुछ आलोचनाएं लिखी गईं। शर्मा जी की इस भाषा की चटक-मटक, उछल-कूद, लपक-झपक और कारीगरी, जिसमें उर्दू-हिन्दी का मजेदार सम्मिश्रण था, अपने ढङ्ग की एक निराली वस्तु थी।......"

बाबू गुलाबराय

"स्वर्गीय पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने 'बिहारी सतसई की भूमिका' नामक ग्रंथ में बिहारी की तुलनात्मक समालोचना निकाली। उसमें आपने बिहारी की उत्कृष्टता दिखलाई। यद्यपि उनकी समालोचना में पक्षपात खींचतान और महफ़िली दाद-सी दिखलाई पड़ती है, (जैसे : बिहारी की कविता शक्कर की रोटी है, जिधर से तोड़ो मीठी है।) और इस कारण कहीं-कहीं (Impressionist criticism) प्रभाववादी आलोचना का रूप धारण कर लेती है, तथापि वह पाण्डित्यपूर्ण है। उससे बिहारी के सम्बन्ध में लोगों की जानकारी हुत कुछ बढ़ गई है और उसी के साथ गाथा-साहित्य से भी हिंदी

भाषा-भाषियों का परिचय हुआ है । उनकी आलोचना केवल प्रभाववादी ही नहीं है, अर्थात् उन्होंने केवल अपने मन को अच्छी लगने वाली बात ही नहीं कही है, वरन् उसमें शास्त्रीय गुण भी दिखलाये हैं । इतना अवश्य है कि उन्होंने बिहारी को पूर्ववर्ती कवियों से श्रेष्ठ बतलाने में कहीं-कहीं थोड़ी-बहुत खींच-तान की है। आपकी आलोचनाओं में कुछ व्यंग्य की मात्रा भी रहती है, उसके कारण उनमें एक विशेष सजीवता आ जाती है।......"

डाक्टर जगन्नाथप्रसाद शर्मा

"पण्डित पद्मसिंह शर्मा की आलोचनात्मक पद्धति—एक की विशेषता की परख दूसरे की विशेषताओं को दिखाकर करना–यह प्रकट करती है कि लेखक का अधिकार दोनों आलोच्य कवियों पर समान है । इस प्रकार तुलनात्मक आलोचना का जो आकर्षक रूप शर्मा जी ने हिन्दी साहित्य में उपस्थित किया है वह वस्तुतः नवीन और स्तुत्य है। स्तुत्य वह इस विचार से है कि उसने एक नवीन अनुभूति को लिखित रूप दिया है । इस प्रकार के साहित्य की आवश्यकता थी। इसके उपस्थित होते ही अन्य सुन्दर तुलनात्मक आलोचनाएँ लिखी गईं । किसी विषय का आरम्भ उद्‌भावना-शक्ति का परिचायक होता है। इस विचार से शर्मा जी का स्थान बड़े ही महत्त्व का समझना चाहिए ।"

पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

"पं० पद्मसिंह जी साहित्य के उच्चकोटि के पंडित थे। उन्होंने संस्कृत, फारसी और उर्दू के साहित्यों का विधिवत् अध्ययन किया था । साहित्य-शास्त्री होने के कारण उनमें सरसता अधिक थी। कहावत है कि "विद्या ददाति विनयम्"। परन्तु शर्मा जी-जैसे बहुत कम विद्वान् विनय-सम्पन्न पाये जाते हैं। अधिकतर तो अपनी विद्या के घमण्ड में चूर और दूसरों को कुछ न समझने वाले ही देखे जाते हैं।

जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

शर्मा जी साहित्य के पूरे मर्मज्ञ और ज्ञाता थे। स्पष्टवादी तो एक ही थे। मुँह पर खरी सुनाते थे। आलोचना तो उनकी तीखी होती ही थी। व्रज भाषा के पक्के प्रेमी और प्राचीन कवियों के पूरे भक्त थे । उनकी भाषा बड़ी चटपटी और चुलबुली होती थी।···हंसी-मजाक की तो वे पुड़िया थे।···उन्हें तुलनात्मक समालोचना का प्रवर्तक कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है।···शर्मा जी फारसी के फाज़िल, उर्दू के उस्ताद और हिंदी के हीरा ही नहीं, संस्कृत-साहित्य के भी सुधा-निधि थे।

चौथा भाग :: प्रतिभा

विहारी की बहुज्ञता

श्री पद्मसिंह शर्मा

[शर्मा जी ने 'सतसई सञ्जीवन भाष्य द्वारा हिन्दी में जिस तुलनात्मक समालोचना की नींव डाली थी, उसकी कुछ झाँकी पाठकों को उनके प्रस्तुत लेख से मिलेगी।]

कवि के विषय में किसी विद्वान् का कथन है कि "कवि प्रकृति का पुरोहित होता है"—जिस प्रकार पुरोहित के लिए यजमान के समस्त कुलाचारों और रीति-रिवाजों का अंतरंग-ज्ञान आवश्यक है, उसी प्रकार कवि को भी प्रकृति के रहस्यों का मर्मज्ञ होना उचित है। इसके बिना कवि, कवि नहीं हो सकता। कवि ही प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा ऐसी बातें चुन सकता है जिन पर दूसरे मनुष्य की दृष्टि नहीं जाती, जाती भी है तो तत्त्व तक नहीं पहुँचती। तह तक पहुँचकर कोई ऐसी बात नहीं निकल सकती, जो साधारण प्रतीत होने पर भी असाधारण शिक्षाप्रद हो, लौकिक होने पर भी अलौकिक आनंदोत्पादक हो और सैकड़ों बार की देखी-भाली होने पर भी नवीन चमत्कार दिखाने वाली हो। प्रकृति के छिपे और खुले भेदों को सर्वसाधारण के सामने मनोहर रूप में प्रकट करना ही कवि का काम है। "अज्ञेय मीमांसा" करने बैठना, आकाश के तारे तोड़ने दौड़ना, कवि का काम नहीं है। कभी-कभी कवि को ऐसा भी करना पड़ता है सही, पर वह मुख्य दार्शनिकों का काम है। कवि का काम इससे भी बड़ा गहन है केवल व्याकरण और छंदः शास्त्र के नियमों से अभिज्ञ होकर वर्णमात्रा के काँटे में नपी-तुली पद्य-रचना का नाम कवित्व नहीं है, जैसा कि आजकल प्रायः समझा जाने लगा है। प्रकृति के पर्यवेक्षण की असाधारण शक्ति रखने के अतिरिक्त विविध कलाओं, अनेक शास्त्रों का ज्ञान भी कवि के लिए आवश्यक है; जैसा कि कविता-मर्मज्ञों ने कहा है—

"न स शब्दो न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला।
जायते यन्न काव्यांगमहो भारो महान् कवेः॥"

अर्थात्—न ऐसा कोई शब्द है, न ऐसा अर्थ है, न ऐसा कोई न्याय है और

न कोई ऐसी कला है, जो काव्य का अंग न हो; इसलिए कवि पर कितना भारी भार है, कुछ ठिकाना है ! इस सब भार को अपनी लेखनी की नोक पर उठाने की जो शक्ति रखता है, वही महाकवि है।

"सकलविद्यास्थानैकायतनं पंचदशं काव्यं विद्यास्थानम्"

—राजशेखर

(जहाँ चौदह विद्या-स्थानों का एक जगह संगम होता है वह 'काव्य' पन्द्रहवाँ 'विद्या-स्थान' है।

यह सब बातें बिहारी की कविता में प्रचुर परिणाम में पाई जाती हैं। सतसई पढ़ने से प्रतीत होता है कि बिहारी का प्रकृति-पर्यवेक्षण बहुत ही बढ़ा-चढ़ा था। मानव-प्रकृति का उन्हें असाधारण ज्ञान था। इसके वह सचमुच पूरे पुरोहित थे। उनका संस्कृत साहित्य का पांडित्य इससे ही सिद्ध है कि संस्कृत के महारथी कवियों के मुकाबिले में उन्होंने अद्भुत पराक्रम दिखलाया है—संस्कृत पद्यों की छाया पर रचना करके, नवीन चमत्कार लाकर कहीं-कहीं उन आदर्श पद्यों को विच्छाय बना दिया है। गणित, ज्योतिष, वैद्यक, इतिहास, पुराण, नीतिशास्त्र और दर्शनों से भी उनका अच्छा प्रगाढ़ परिचय था; जैसा कि आगे के अवतरणों से सिद्ध है।

बिहारी की प्रतिभा का विहारस्थल बहुत विस्तृत था, सर्वत्र समान रूप से उसकी गति अप्रतिहत थी। भास्कर की प्रभा की तरह वह प्रत्येक पदार्थ पर पड़ती थी। यही नहीं, जहाँ सूर्य की किरणें भी नहीं पहुँचती, वहाँ भी वह पहुँचती थी। 'जहाँ न जाय रवि वहाँ जाय कवि' इस कथन की पुष्टि बिहारी की कविता से अच्छी तरह होती है। सूर्य की किरणें आलोकग्राही पदार्थ पर पड़कर अपने असली रूप में प्रतिफलित होती हैं, दूसरी जगह नहीं; परन्तु बिहारी की अद्भुत प्रतिभा का प्रकाश जिस पदार्थ पर भी पड़ा, उसे ही अपने रूप में चमका कर दिखा दिया। गणित, ज्योतिष, इतिहास, नीति और दार्शनिक तत्त्वों से लेकर बच्चों के खिलौने, नटों के खेल, ठगों के हथकंडे, अहेरी का शिकार, पौराणिक की धार्मिकता, पुजारी का प्रसाद, वैद्य की पर-प्रतारणा, ज्योतिषी का ग्रहयोग, सूम की कंजूसी, जिसे देखिये वही कविता के रंग में रँगा चमक रहा है।

इस जगह सबके उदाहरण देना कठिन है, बात बहुत बढ़ जायगी, इसलिए इस प्रकार के कुछ नमूनों से ही संतोष करना होगा। किसी काव्य पर कुछ लिखते हुए प्रारम्भ में उस काव्य से सुन्दर सूक्तियों के नमूने देने की रीति है, हम भी चाहते थे कि ऐसा करें—इस प्रकरण में बानगी के तौर पर

कुछ सूक्तियों के नमूने सतसई से उद्धृत करें—पर इस इच्छा से विवशतावश विरत होना पड़ा। इसके दो कारण हैं, एक तो अनेक सूक्तियाँ तुलनात्मक समालोचना में और विरह-वर्णन में आ गई हैं, कुछ इस प्रसंग में आ जायंगी, कुछ सतसई-संहार में मिलेंगी। इसलिए पृथक् देने की कुछ आवश्यकता न रही। दूसरे, सतसई में किसे कहें कि यह सूक्ति है और यह साधारण उक्ति है। इस खाँड की रोटी को जिधर से तोड़िये उधर से ही मीठी है, इस जौहरी की दूकान में सब ही अपूर्व रत्न हैं। बानगी में किसे पेश करें। एक को खास तौर पर आगे करना दूसरे का अपमान करना है, जो सहृदयता की दृष्टि से, हम समझते हैं, अपराध है। रुचि-भेद से किसी को कोई सूक्ति अच्छी जँचे, कोई वैसी न जँचे, यह और बात है। किसी को शब्दालंकार पसन्द है किसी को अर्थालंकार, कोई वर्णन-वैचित्री पर रीझता है तो कोई सादगी पर फिदा है, कोई रस पर मरता है तो कोई बंध-सौष्ठव पर जान देता है। कोई पदार्थ का उपासक है तो कोई पदावली के पाँव पूजता है।

सतसई के विषय में स्वर्गीय राधाकृष्णदास जी की यह सम्मति सोलह आना सत्य है—

"यह सतसई भाषा की कविता की टकसाल है"

और बिहारीलाल के सम्बन्ध में गोस्वामी श्रीराधाचरण जी की इस युक्ति में कुछ भी अत्युक्ति नहीं है कि—

"यदि सूर सूर, तुलसी शशी, उड़गन केसवदास हैं तो बिहारी पीयूष-वर्षी मेघ है, जिसके उदय होते ही सबका प्रकाश आच्छन्न हो जाता है, फिर उसकी वृष्टि से कवि-कोकिल कुहकने, मनोमयूर नृत्य करने और चतुर-चातक चुहकने लगते हैं। फिर बीच-बीच में जो लोकोत्तर भावों की विद्युत चमकती है, वह हृदयच्छेद कर जाती है।"

भाषा पर बिहारी का असाधारण अधिकार था। सतसई की भाषा ऐसी विशुद्ध है और शब्द-रचना इतनी मधुर है कि सूरदास को छोड़कर दूसरी जगह उसकी समता मिलनी दुर्घट है, सतसई के सम्बन्ध में ब्रजभाषा के किसी पुराने पारखी की यह सम्मति सर्वथा सत्य है—

"ब्रजभाषा बरनी सबै, कविवर बुद्धि-विशाल।
सबकी भूषन सतसई, रची बिहारी लाल॥'

ब्रजभाषा के मर्मज्ञ का विदग्ध हृदय इस कथन की सत्यता का साक्षी है। ब्रजभाषा को सिर्फ सूंघकर परखने वाले कुछ महापुरुषों की दिव्य दृष्टि में इसकी भाषा वैसी 'बढ़िया' चाहे न हो, पर भाषा के जौहरी भाव से भी अधिक

इसकी परिष्कृत भाषा पर लट्टू हैं। इस समय जब कि खड़ी बोली के जोशीले नौजवानों की ब्रिगेड ने ब्रजभाषा के 'विज़न' का बिगुल बजाकर कतले-आम मचा रखा है, खड़ी बोली की किरातपुरी के तोते तक जब इसे देखकर दारय, मारय, ग्रस, 'पिब' कहकर चिल्ला रहे हैं, तब ब्रजभाषा के सौष्ठव की दुहाई देना, नक्कारखाने में तूती की आवाज पहुँचाने के बराबर है। ब्रंजभाषा के मर्मज्ञ स्वयं जानते हैं कि सतसई की भाषा कैसी कुछ है और जो नहीं जानते हैं वे किसी के समझाने से भी क्या समझेंगे।

गणित का ज्ञान

कहत सबै बेंदी दिये आँक दसगुनों होत।
तिय लिलार बेंदी दिये अगनित बढ़त उदोत॥
कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगौ इतौ उदोत।
बंक बिकारी देत ज्यों दाम रुपैया होत॥

गणित के मूल सिद्धांत का कविता के रूप में कितना मनोहर निदर्शन है। गणित के सिद्धांत से अपने मतलब की बात कितने अच्छे ढंग से सिद्ध की है। विन्दु (शून्य) देने से अंक दस गुना हो जाता है। और तिरछी विकार लगाने से दाम के रुपये बन जाते हैं। यह सब गणितज्ञ जानते हैं। पर इस तरह कहना कवि ही जानता है। गणित-शास्त्र में दसगुणोत्तरा संख्या रखने की चाल है। इकाई को दस से गुनकर दहाई और उसे दस से गुनकर सैंकड़ा (शत) इत्यादि दसगुणोत्तर संख्या बनाते हैं। पर यहाँ बिहारीजी के गणित में कुछ दूसरा ही चमत्कार है—यहाँ दसगुणित नहीं असंख्य-संख्या-गुणित-अंक (उद्योत) पैदा हो जाते हैं। यह कवि की प्रतिभा का ही काम है।

ज्योतिष का चमत्कार

मंगल बिंदु सुरंग, ससि मुख केसर आड़ गुरु;
इक नारी लहि संग, रसमय किय लोचन जगत॥

इस सोरठे में बिहारी ने अपने ज्योतिष-ज्ञान का परिचय बड़े मनोहर रूप में दिया है। ज्योतिष का सिद्धान्त है कि जब वृहस्पति और मंगल के साथ, चन्द्रमा एक राशि पर आता है तो देशव्यापक वृष्टि होती है—

'गुरु-भौम-समायोगे करोत्येकार्णवां महीम्'

ज्योतिष के इस तत्त्व को कवि ने कितना कमनीय रूप दिया है। लौकिक पुरुषों को जितना आनन्द इस भौतिक वृष्टि से होता ह उससे कहीं अधिक विदग्ध सहृदयों को इस कवितामृतवर्षा से होता है।

माथे पर लगी लाल बेंदी, मंगल है। मुख चन्द्रमा है। उस पर केसर का (पीला) तिलक वृहस्पति है। इन सबने एक नारी (नाड़ी)—स्त्री राशि—में इकट्ठे नेत्र-होकर संसार को रसमय (अनुरागमय, जलमय) कर दिया—

मंगल का रंग लाल होता है इसलिए उसका 'अंगारक' और 'लोहितांग' नाम है। सो यहाँ बेंदी है। वृहस्पति का वर्ण पीला है वह यहाँ केसर का तिलक है। मुख की चन्द्रता प्रसिद्ध ही है। 'नारी' और 'रस' शब्द श्लिष्ट हैं (रस-जल और शृङ्गार, 'रसो जलं रसो हर्षो रसः शृङ्गार उच्यते ॥')

यह सोरठा, श्लेषानुप्राणित समस्त-वस्तु-विषय-सावयव रूपक का और कवि के ज्योतिष ज्ञान का उत्कृष्ट उदाहरण है।

महाकवि गालिब ने भी (नीचे के शेर में) ज्योतिष के फलादेश की परीक्षा आशिकों की किस्मत पर करनी चाही है, और मौलाना हाली ने इसे कवि की प्रतिभा का उत्ताम उदाहरण बतलाकर कहा है कि आशिक अपनी धुन में इतना मस्त (तल्लीन) है कि उसे हर जगह अपने ही मतलब की सूझती है, ज्योतिषी ने जो साल को अच्छा बतलाया है, उसका असर संसार की अन्य घटनाओं पर क्या होगा, इससे उसे कुछ मतलब ही नहीं। वह देखना चाहता है कि देखूं आशिक इस साल बुतों से क्या फ़ैज़ (लाभ) पाते हैं।

देखिये पाते हैं, उश्शाक बुतों से क्या फ़ैज़,
इक बिरहमन ने कहा है कि यह साल अच्छा है।

(ग़ालिब)

सनि कज्जल चख झख लगनि उपज्यो सुदिन सनेह।
क्यों न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेस सब देह॥

ज्योतिष का सिद्धान्त है कि जन्म समय में यदि शनि, गुरु, की राशि—अर्थात् धन या मीन में, और स्वराशि—मकर या कुंभ में तथा उच्चराशि—तुला में हो तो इस सुलग्न में जन्म लेने वाला मनुष्य नरपति होता है। जैसा कि लिखा है—

"गुरुस्वर्क्षोच्चस्थे नरपतिः।"

(वराह मिहिर बृहज्जातक)

कवि के स्नेह-बालक की जन्म-कुंडली में देखिये यह योग कैसा अच्छा पड़ा है—आंखन का जल—शनि है। चख—चक्षु मीन है,—(शनि का रंग नीला है और मीन नेत्र का उपमान है यथा मीनाक्षी)—ऐसे सुयोग में जिसका जन्म हुआ है वह स्नेह-बालक, सब देह रूप देश पर अधिकार जमा कर—राजा बन-कर—क्यों भोग न करेगा? अवश्य करेगा ज्योतिष की बात कभी झूठ हो

सकती है। ज्योतिष के फलादेश में किसी को संदेह भी हो सकता है, पर बिहारी के इस ज्योतिष में संदेह का अवसर नहीं है।

तिय तिथि तरनि किसोर, वह पुन्न (पुन्य) काल सम दोन।
काहू पुन्यन पाइयत बैस-सन्धि-संक्रोन॥

इस दोहे में संक्रांति के पुण्य प्राप्य पर्व का कितना अच्छा रूपक है। इस रूपक के 'ब्रह्मकुंड' में रसिक भक्तों के मन अनगिनत गोते लगा रहे हैं।

वैद्यक विज्ञान

"मैं लखि नारी ज्ञान, करि राख्यो निरधार यह।
वह ई रोग निदान, वहै, वैद औषध वहै॥'

कविता के नलके में वैद्यक विज्ञान का 'आसव' खींचकर इस सोरठे की शीशी में भर दिया है। वैद्यक में और है क्या ? नाड़ी-ज्ञान, रोग-निदान, औषधि और वैद्य ! मूल बातें यह तीन चार हैं, बाकी इसकी व्याख्या है।

नाड़ी—(नाड़ी) ज्ञान से क्या अच्छा रोग का निदान किया है ?

"वहई रोग निदान, वहै, वैद्य औषध वहै"

वही रोग का निदान (आदि कारण) वही वैद्यक-चिकित्सक और वही औषध है।

"यह तर्ज़ अहसान करने का तुम्हीं को ज़ेब देता है,
मरज़ में मुब्तला करके मरीज़ों को दवा देना"

(अकबर)

"मुहब्बत में नहीं है फर्क जीने और मरने का।
उसी को देखकर जीते हैं जिस काफ़िर पै दम निकले॥"

(ग़ालिब)

"यह विनसत नग राखिकै जगत बड़ौ जस लेहु।
जरी विषम-जुर-ज्याइये आय सुदर्शन देहु॥"

इस नष्ट होते हुए नग (रत्नकामिनीरत्न) को बचाकर जगत् में बड़ा यश प्राप्त करो, विषम ज्वर में जली हुई को 'सुदर्शन' देकर जिलाओ।

वियोग-व्याधि ने विषम ज्वर का रूप धारण किया है, उसकी निवृत्ति के के लिये सुदर्शन (सुन्दर दर्शन) अपेक्षित है।

'विषमज्वर' और 'सुदर्शन' पद श्लिष्ट हैं।

इतिहास-पुराण-परिचय

ये दोहे कवि के इतिहास-परिचय के पुष्ट प्रमाण हैं—

विरह विथा-जल-परस बिन वसियय मो हिय-ताल।

कछु जानत जल-थंभ विधि, दुरजोधन लौं लाल ।

दुर्योधन को 'जलस्तंभन विद्या' सिद्ध थी। उसी के प्रताप से वह युद्ध के अंत में कुछ काल तक तालाब में छिपे बैठे रहे थे।

यह ऐतिहासिक उपमा कविता में आकर कितनी चमत्कृत हो गई है। कोई विरहिणी कहती है—

हे लाल ! दुर्योधन के समान तुम भी कुछ जलस्तंभविधि जानते हो, तभी तो विरह-व्यथा-जल के स्पर्श से बचे रहकर मेरे हृदय-सरोवर में (आराम से) बैठे हो ? हृदय में रहते हो पर उसमें भरे विरह-व्यथा के जल का—विरह व्यथा का—तुम्हें स्पर्श नहीं होता बड़े बेपीर हो (चिकने घड़े हो)

बसि सकोच-दस-वदन-वस साँच दिखावति बाल ।
सिय लौं सोधति तिय तनहि लगनि-अगनि की ज्वाल ॥

रामायण की प्रसिद्ध घटना 'अग्नि-परीक्षा' का उल्लेख इस दोहे में कितनी उत्तमता से किया है। विवश होकर सीताजी को रावण के यहाँ रहना पड़ा था : वहाँ से छुटकारा पाने पर उन्होंने अपने सत्य की परीक्षा अग्नि में प्रवेश करके दी थी। यहाँ संकोच (लज्जा-सञ्चारी) प्रियदर्शन में बाधक होने से रावण है, लगन—दृढ़ प्रेम, अग्नि है। साधना—उत्कण्ठा-पूर्वक स्मरण करना—(सोधित पद श्लिष्ट है—देह शुद्ध करना और स्मरण करना) तनुशोधन है।

अर्थात् उसे संकोच ने ही अब तक तुमसे नहीं मिलने दिया। संकोच ही मिलने में बाधक था, प्रेम का अभाव नहीं, उसका तुममें सच्चा अविचल प्रेम है। इसकी परीक्षा वह लगन की अग्नि में बैठकर दे रही है। तुम्हारा स्मरण कर रही है। संदेह छोड़कर उसे अंगीकार करो !

नीति-निपुणता

दुसह दुराज प्रजानि कौं, क्यों न बढ़े दुख दंद ।
अधिक अँधेरौ जग करत, मिल मावस रवि चंद ॥

जब 'दुअमली होती है—प्रजा पर दुहरे शासकों का शासन होता है—तो प्रजा के दुख बेतरह बढ़ जाते हैं संसार के इतिहास में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। दो फकीर एक गुदड़ी में गुजारा कर लेते हैं पर दो राजा एक 'रजाई' में नहीं रह सकते, यह एक प्रसिद्ध कहावत है। जब कभी कहीं दुर्भाग्यवश ऐसा हुआ है, तो प्रजा पर विपत्ति के बादल छा गये हैं। प्रजा-पीड़न पराकाष्ठा को पहुँच गया है।

बिहारी नें यह बात एक ऐसे दृष्टान्त से समझाई है जिसे सदा सब कोई

देखते हैं। पर नहीं समझते कि क्या बात है। अमावस के दिन अंधकार के आधिक्य का क्या कारण है? यही दुअमली। उस दिन आकाश के दो शासक—सूर्य और चन्द्र—एक राशि में इकट्ठे होते हैं। जिससे संसार में आदर्श अंधकार छा जाता है।

सवैया

एक रजाई समै प्रभु द्वै सु तमोगुन को बहु भाँति बढ़ावत।
होत महा दुख दंद प्रजान को और सबै सुभकाज थकावत॥
"कृष्ण" कहै दिननाथ निसाकर एक ही मंडल में जुड़ आवत।
देखौ प्रतच्छ अमावस को अँधियारो कितौ जग में सरसावत॥

(कृष्ण कवि)

कहै इहै श्रुति सुमृति सो यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसक हि राजा पातक रोग॥

श्रुति, स्मृति और सयाने—नीति-निपुण—लोगों की नीति, सब इसमें एक स्वर से सहमत है कि राजा, पातक और रोग, ये तीन 'निसक'—निःशक्त निर्बल को ही दबाते हैं।

'ज्ञानी' लोग सब कुछ करते हुए भी "पद्मपत्रमिवाम्भसि" निर्लिप्त रहते हैं! ज्ञानाग्नि की प्रचंड ज्वाला उनके पातक-पुञ्ज को तृण-समूह की तरह भस्म कर डालती है। जिन पातकों का ज्ञानहीन मनुष्य के लिये प्राणांत प्रायश्चित्त बतलाया है, प्रचंड ज्ञानी (प्रबल शासक जाति के समान) उससे एकदम बरी समझे गये हैं। मतलब यह कि ज्ञान-बलहीन को पातक दबाते हैं। देह-बलहीन को रोग दबाते हैं। और पराक्रमहीन—शासन-बल-रहित—जाति को दबाते हैं। संसार का इतिहास इसमें साक्षी है।

"सर्वो बलवतां धर्मः सर्वं बलवतां स्वकम्।
सर्वं बलवतां पथ्यं सर्वं बलवतां शुचि॥" (महाभारत)

बसै बुराई जासु तन ताही कौ सनमान।
भलौ भलौ कहि छाड़िये खोटे ग्रह जप दान॥

संसार में सीधे-सच्चे और भले आदमी का गुजारा नहीं, उसे कोई पूछता ही नहीं। छली, कपटी और प्रपंची की सब जगह पूजा होती है, पर-पीड़न में जो जितना ही प्रवीण है, उतना ही उसका आदर होता है जिसने छल, बल से दूसरों को दबाकर अपनी धाक बिठा ली—सिक्का जमा लिया, उसी का लोहा सब मानते हैं। सीधे बेचारे एक कोने में पड़े सड़ते रहते हैं उनकी ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देखता। जो खोटे ग्रह हैं (शनैश्चरादि) जिनसे

किसी को हानि पहुँच सकती है—उन्हीं के नाम पर जप और दान किया जाता है। भले को भला कहकर छोड़ देते हैं। अजी यह स्वभाव ही से साधु हैं, माधो के लेने में न ऊधो के देने में।

दार्शनिक तत्त्व

"मैं समझ्यो निरधार—यह जग काँचो काँच सो।
एकै रूप अपार प्रतिबिंबित लखियत जहाँ॥"

'अध्यात्मवाद' और 'विवर्तवाद' के समान 'प्रतिबिंबवाद' वेदान्त शास्त्र का एक प्रसिद्ध वाद है। इस सोरठे में कवि ने वेदान्त के 'प्रतिबिंबवाद' को कविता के साँचे में ढालकर कितना कमनीय रूप दे दिया है। संसार की असारता दिखाने के लिये काँच को दृष्टान्त यहाँ कैसा चमक रहा है, इसमें संसार की असारता किस प्रकार पड़ी झलक रही है।

इस दृश्य प्रपंच के वेदान्तमतानुसार ये पाँच अंश हैं—

"अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपंचकम्।
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्।"

(पंचदशी)

अर्थात् अस्ति, भाति, प्रिय, रूप और नाम, ये पाँच अंश हैं इनमें पहले तीन—अस्ति, भाति और प्रिय अंश ब्रह्म का रूप हैं और पिछले दो—नाम और रूप जगत् का स्वरूप हैं। प्रत्येक पदार्थ में सत्ता प्रकाश और प्रेमास्पदता, ब्रह्म का रूप है, जो सत्य है। घट-पटादि नाम और आकार संसार का रूप है और यही मिथ्या है।

यह जगत् काँच के शीशे की तरह कच्चा— क्षण-भंगुर है। ज्ञान की जरा ठेस लगते ही चकनाचूर हो जाता है। प्रतिबिंबग्राही होनेसे एक ही ब्रह्म प्रतिबिंबित हुआ दीख रहा है, यह सब उसी का विराट रूप है, जो देख रहे हो। नाना-भाव की पार्थक्य प्रतीति का कारण नाम, रूप, मिथ्या है।

"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" "नेह नानास्ति किञ्चन" "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते"।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतांतरात्मा, रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥"

इत्यादि शतशः श्रुतियाँ इस बात का प्रतिपादन डंके की चोट कर रही हैं।

अज्यौं तरयोना ही रह्यौ श्रुतिसेवत इक अंग।
नाकबास बेसर लह्यौ बसि मुक्तन के संग॥

ससार-सागर से पार होने के लिए जीवन्मुक्त पुरुषों की संगति भी एक मुख्य उपाय है यही बात इस दोहे में एक मनोहर श्लेष में लपेट कर एक निराले ढंग से कही गई है। 'तरौना' कान के एक आभूषण का नाम है जिसे तरकी या टेढ़ी भी कहते हैं, 'बेसर' नाक का भूषण (नथ) है। इस दोहे में कवि ने श्लेष के बल से बड़ा अद्भुत चमत्कार दिखलाया है। कहते हैं कि श्रुति (कान) रूप एक अंग का सेवन करने वाला तरौना अब तक 'तरयौना' ही है और 'मुक्तनि के सँग बसि' मोतियों के साथ रहकर 'बेसर' ने नाकबास प्राप्त कर लिया है—नाक में स्थान पा लिया। इसका दूसरा प्रतीयमान अर्थ है कोई किसी मुमुक्षु से कह रहा है कि मुक्ति चाहते हो तो जीवन्मुक्त महात्माओं की संगति करो, श्रुति-सेवा भी एक संसार तरणोपाय है सही, किन्तु इससे शीघ्र ही नहीं तरोगे, देखो यह कान का तरौना श्रुतिरूप एक अंग का कब से सेवन कर रहा है पर अब तक 'तरयौना ही रह्यो'—तरा नहीं, तरौना ही बना है। और बेसर ने 'मुक्तनि के संग बसि' मुक्तों को संगति 'नाक-बास लह्यो'—बैकुंठ—सालोक्य मुक्ति—प्राप्त कर ली।

अथवा केवल श्रुतिसेवी मुमुक्षु से कह रहा है कि एक अंग श्रुति का सेवन करते हुए तुम अब तक नहीं तरे—विचारतरंगों में गोते खा रहे हो और वह देखो एक अमुक व्यक्ति की सत्संगति से 'बेसर'—अनुपम नाकवास—बैकुंठ-प्राप्ति—सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर ली। दोहे के तरयौना, श्रुति, अंग, नाक, बेसर, मुक्तनि ये सब पद श्लिष्ट हैं।

संगति की महिमा से ग्रन्थ भरे पड़े हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने भगवद्भक्तों की सत्संगति की महिमा बड़े समारोह से समझाई है। पर इस चमत्कारजनक प्रकार से किसी ने कहा हो, सो हमने नहीं सुना। बिहारी अपने कविता-प्रेमियों की नब्ज पहचानते हैं, वे जानते हैं कि 'अपने बावले' को किस प्रकार समझाया जाता है। रस-लोलुप कविता-प्रेमी सत्संगति की महिमा किस रूप में सुनना पसंद करेंगे। रात दिन जो चीजें प्रेमियों की नजर में समाई रहती हैं उनकी ओर इशारा करके ही उन्हें यह तत्त्व समझना चाहिए। कवि के लिये यही उचित है। नीरस उपदेश पर रसिक-रोगी कब कान देता है। सुनता भी नहीं, आचरण करना तो दूर रहा।

कवि जब विषयासक्त प्रेमी को विषयासक्ति का दुष्परिणाम समझाना चाहता है तो उसके लिये किसी पतित भक्त या योगभ्रष्ट ज्ञानी का दृष्टान्त देने को वह इतिहास के पन्ने पलटने नहीं बैठता। वह उस विषयी की दृष्टि

में बसी हुई चीज को सामने दिखाकर झटपट बोल उठता है कि देखो, विषया-सक्त की दुरंतना।

जोग जुक्ति सिखई सबै मनो महामुनि मैन।
चाहत पिय अद्वैतता कानन सेवत नैन॥

इस दोहे में योगदक्ष कानन-सेवी ब्रह्माद्वैताभिलाषी वानप्रस्थ की समाधि (प्रतीत) है। जिस प्रकार किसी सद्गुरु महामुनि से योग की दीक्षा पाकर कोई प्रधान पुरुष प्रिय परम-प्रेमास्पद-ब्रह्म से अद्वैत—अभेद—चाहता हुआ, कानन—वन का सेवन करता है, इसी प्रकार कामिनी के नयन, महामुनि मदन से योगयुक्ति—प्रिय संगति की युक्ति—सीखकर कानों का सेवन कर रहे हैं।

योग, अद्वैतता, कानन,पद श्लिष्ट हैं 'योगः संहननोपाय ध्यानसंगतियुक्तिषु' के अनुसार मुनि के पक्ष में योग का अर्थ ध्यान है। नेत्र के पक्ष में संगति।

बुधि अनुमान प्रमान श्रुति किये नीठि ठहराइ।
सूछम कटि पर-ब्रह्म लौं अलख लखी नहिं जाइ॥

इस दोहे में कवि ने परम सूक्ष्म कटि को अलख परब्रह्म की उपमा देकर कौतूहल-जनक कमाल किया है। पूर्वार्द्ध में ब्रह्म-दर्शन के उपायों का निर्देश करने वाली एक सप्रसिद्ध श्रुति को किस मर्मिकता से निराले ढंग पर व्यक्त किया है।

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।'

श्रुतियों के द्वारा ब्रह्म के सम्बन्ध में सुना, अनुमान के द्वारा उसके सच्चिदा-नन्द स्वरूप को जाना, निरन्तर ध्यान द्वारा किसी प्रकार इस तत्व को बुद्धि में ठहराया, फिर भी ब्रह्म, ऐसा अलक्ष्य (अलख) है कि लखा नहीं जाता—उसका साक्षात्कार नहीं होता।

'कटि' (कामिनी की कमर) भी कुछ ऐसे सूक्ष्म और अलख है। श्रुति—शब्द—प्रमाण—द्वारा सुनते हैं कि कमर हैं,—'सनम! सुनते हैं तेरे भी कमर है'—फिर अनुमान करते हैं कि यदि कमर नहीं है तो यह शरीर—प्रपंचस्तन-शैल, मुख-चन्द्र आदि किसके सहारे ठहरे हुए है। 'ब्रह्म'नहीं है तो यह विश्व-प्रपंच—हिमालयादि-पर्वत, चंद्रादि ग्रह-मण्डल किसमें स्थित हैं—कल्पित हैं। इसीलिए कटि—ब्रह्म अवश्य है। इस तत्व को कटि ब्रह्म के सत्तास्वरूप को—निरंतर ध्यान द्वारा किसी प्रकार बुद्धि में ठहराते हैं। फिर भी 'अलख लखी नहिं जाइ' उसका साक्षात्कार नहीं होता, नजर नहीं आती, दिखलाई नहीं देती—'कहाँ है किस तरफ को है, किधर है,' यही कहते रह जाते हैं।

'सूछम कटि परब्रह्म सी अलख लखी नहिं जाय।'

पूर्ण दार्शनिक 'पूर्णोपमा' है। परब्रह्म उपमान। कटि उपमेय। लखी नहीं जाय, साधारण धर्म। 'सी, या, लौं' वाचक। देखा वाचक! कैसी मनोहर पूर्णोपमा है।

हिंदी संसार के सुप्रसिद्ध प्रतिभाशाली वश्यवाक् वर्तमान कविराज श्रीयुत पंडित नाथूराम शंकर जी शर्मा 'शंकर' ने भी दार्शनिक कविता के रूप में अनोखे ढंग पर 'कमर की अकथ कहानी' कही है, कटि का चमत्कृत वर्णन इस प्रकार किया है—

घनाक्षरी

'पास के गये पै एक बूँद हू न हाथ लगै,
दूरसों दिखात मृगतृष्णिका में पानी है।
"शंकर" प्रमाण-सिद्ध रंग को न संग पर,
जान पड़ै अंबर में नीलिमा समानी है॥
भाव में अभाव है अभाव में धौं भाव भरयो,
कौन कहै ठीक बात काहू ने न जानी है।
जैसे इन दोउन में दुविधा न दूर होत,
तैसे तेरी कमर की अकथ कहानी है'॥

जनाब "अकबर" ने भी अपने खास रंग में कमर की कायनात बयान करने में कमाल किया है, क्या खूब फर्माया है।

कहीं देखा न हस्ती वो अदम का इश्तराक ऐसा।
जहाँ में मिस्ल रखती ही नहीं उनकी 'कमर' अपना।
'जो पूछा नेस्ती हस्ती में क्यों कर फर्क जाहिर हो।
'कमर' ने यार की ईमा किया मैं हद्द-फासिल हूँ॥'
जगत जनायो जिहिं सकल सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यों आँखिन सब देखिये आँखि न देखी जाहिं॥

यह सब जगत् (जिसकी सत्ता से स्थित और) जिसके प्रकाश से प्रतिभासित हो रहा है अपनी माया से रचकर जो इसे दिखा रहा है वह स्वयं 'अज्ञेय' है, नहीं जाना जाता, नहीं दीख पड़ता। आँख से सब कुछ देखा जाता है सबको आँख से देख सकते हैं पर स्वयं आँख (अपने आपको) नहीं दीखती। आँख को आँख से नहीं देख पाते।

कितनी पते की बात कही है, कैसा सुन्दर दृष्टान्त है। यह जितना सहज और सरल है उतना ही विगूढ़ दार्शनिक रहस्य इसमें छिपा है इसकी व्याख्या म बहुत कुछ कहा जा सकता है।

भक्ति-मार्ग

बिहारीलाल जिस प्रकार ज्ञानमार्गगामी थे इसी प्रकार भक्ति पंथ के प्रवीण पथिक थे। इसके भी दो चार दोहे सुन लीजिये। कैसे नावक के तीर हैं।

पतवारी माला पकरि, और न कछू उपाव ॥
तरु संसार पयोधि कौं, हरि नामै करि नाव ॥

कैसा अच्छा रूपक बाँधा है, और कितनी सच्ची बात कही है। हरि नाम की नाव बना और जयमाला की पतवार पकड़—बस इस संसार-समुद्र को तर जा, और कोई उपाय पार उतरने का नहीं है।

तौ लगि या मन-सदन में हरि आवहिं किहि बाट।
निपट बिकट जब लगि जुटे, खुलहिं न कपट-कपाट ॥

कितनी मनोहर रचना है, कर्ण, कटु टकार की बहार इस जगह कितनी श्रुति-मधुर मालूम दे रही है। कपटी भक्त को क्या फटकार बतलाई है।

जब तक कपट के विकट किवाड़ जुटे हैं, तब तक मन रूप मन्दिर में हरि किस रास्ते से आवें। जरा सोचो तो, लोहे के फाटक से मकान को मजबूती के साथ बंद कर रक्खा है और चाहते हो कि कोई भला आदमी उसके अंदर पहुँचकर तुम्हें कृतार्थ करे।

'ई खयालस्तो महालस्तो जनूँ'
जपमाला छापा तिलक सरै न एकौ काम।
मन काँचे नाचे वृथा साँचे राँचे राम ॥

इस दोहे के दंड-प्रहार ने भंड-भक्ति का भाँडा फोड़ दिया है।

दूरि भजन प्रभु पीठ दै, गुन विस्तारन काल।
प्रगटत निरगुन निकट हि, चंग रंग गोपाल ॥

बिलकुल नई बात कही है। साकार या सगुण के उपासक, निराकार या निर्गुण के उपासकों पर ताना मारा करते हैं कि निर्गुण को उपासना हो ही नहीं सकती। बिहारी कहते हैं कि गुण विस्तार करने के—सगुण रूप की उपासना के—समय प्रभु पीठ देकर दूर भागते हैं।

उसके गुण अनन्त हैं कोई पार नहीं पा सकता, फिर कोई सगुणोपासक उसे क्षीरसागर में ढूँढ़ता है, कोई बैकुंठ में खोजता है, कोई कैलाश पर, और कोई और कहीं। पर निर्गुणोपासना में वह पास ही प्रकट हो जाता है जहाँ ध्यान करो वहाँ उसकी प्राप्ति सुलभ है चंग की—पतंग की—डोरी को जितना ही बढ़ाओ उतना ही पतंग ऊपर जाता है—डोरी (गुण) काट दो तो पास

ही आ पड़ता है। 'चंग रंग' चंग की तरह। कोई इसका अर्थ यह भी कहते हैं कि गुण-विस्तार काल में—सत्व रजस्तमो-लक्षण-गुणविशिष्ट पुरुषों से वह (ईश्वर) दूर रहता है, और जो निर्गुण हैं—गुणातीत हैं—उनके निकट में ही प्रकट हो जाता है। जैसा कि भगवद्गीता में कहा है—

गुणानेतानतीत्यत्रीन् देही देहसमुद्भवान्।
जन्म-मृत्यु-जरा-दुखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥

पर इस अर्थ में चंग रंग की संगति बिगड़ जाती है।

थोरेई गुन रीझते बिसराई वह बानि।
तुमहूँ कान्ह मनौ भये, आज काल के दानि ॥

बड़ी 'शोखी' है। 'दान' कहते हैं नट के ढोलिया को। नट बढ़िया से बढ़िया तमाशा दिखाता है—जान पर खेलकर एक से एक कठिन कला करके दिखाता है पर ढोलिया ढोल पर डंका मारकर बराबर यही कहता रहता है 'कि यह कला भी नहीं बदी, यह भी नहीं बदी।'

भक्त ईश्वर से कहता है कि पहले तुम थोड़े से गुण पर रीझ जाते थे—झूठ-मूठ भी किसी के मुँह से तुम्हारा नाम निकल गया तो उसका बेड़ा पार लगा दिया। पर अब हम नाना प्रकार की भक्ति से—अपनें अनेक सद्गुण संपादन करके–तुम्हें रिझाना चाहते हैं, पर तुम रीझते। नहीं मालूम होता है कि तुम भी नट के ढोलिया बन गये हो। हमारी प्रत्येक प्रार्थना, उपासना, भक्ति और सत्कर्म पर 'यह भी नहीं बदा' कहकर उपेक्षा कर रहे हो।

अथवा आजकल के दानी जिस तरह दान पात्र (याचक) में सौ मीन मेख निकाल कर—तुममें यह बात तो अच्छी है, पर इतनी कसर है, इसलिए हमारी सहायता के तुम पात्र नहीं हो, इत्यादि बहाना करके दान-पात्र को कोरा टाल देते हैं, ऐसा ही बर्ताव तुम अपने दीन भक्तों के साथ करने लगे हो।

कबको टेरत दीन रट होत न स्याम सहाय।
तुमहूँ लागी जगत्-गुरु जगनायक जगबाय ॥

संसार बड़ा स्वार्थी है। यहां कोई दीन-दुखी के करुण-क्रन्दन पर कान नहीं देता। इसी संसार की हवा, मालूम होता है, 'हे जगत् गुरु 'जग नायक' श्याम ! तुम्हें भी लग गई। तभी इतने बेपीर हो गये हो।'

पाँचवाँ भाग :: श्रद्धाञ्जलि

साहित्य-महारथी पं० पद्मसिंह शर्मा की स्मृति में

लेखक : श्री महावीर अधिकारी

प्रत्येक वर्ष को ७ अप्रैल आती है और हिन्दी के साहित्यकार प्रचलित परम्परा के बहाने पण्डित पद्मसिंह शर्मा का नाम भी उसी तरह स्मरण कर लेते हैं, जिस प्रकार अनेक महापुरुषों का नाम अनेक दिशाओं में लिया जाता है। पंडित पद्मसिंह शर्मा ने प्रकांड पांडित्य, अध्यवसाय और ओजस्विता से हिंदी को जो दिया था, उसका महत्त्व द्विवेदी युग के रचना-काल में शायद किसी से भी कम नहीं है। आज यद्यपि आलोचना शैली, भाषा और वस्तु की दृष्टि से हिंदी-साहित्य द्विवेदी-काल से बाँधकर नहीं रखा जा सकता, न ही उस समय के साहित्यिक आदर्श आज हमारे युग के सही आदर्श बन सकते हैं; लेकिन द्विवेदी युग के आलोचकों और निबन्ध-लेखकों में इतने विराट व्यक्तित्व वाले समालोचक इने-गिने ही मिलेंगे जिन्होंने हिंदी की सम्पूर्ण दिशा को प्रभावित किया। यदि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और बाबू श्यामसुन्दरदास ने हिंदी को एक वैज्ञानिक आलोचना-पद्धति दी और पश्चिम के साहित्यिक मतवादों की शुद्ध विवेचनापूर्ण टीका करते हुए हिंदी के लिए उसकी ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को सामने रखकर एक वैज्ञानिक आलोचना-पद्धति, इतिहास-लेखन और गवेषणात्मक साहित्य दिया तो पंडित पद्मसिंह शर्मा ने भी संस्कृत, फारसी, उर्दू और अरबी साहित्य का अवगाहन करके भाषा को जो व्यंजना-शक्ति प्रदान की है, वह अनुपम है। खड़ी बोली को जो रवानी, जो जिन्दगी और जीवन से निकटता प्राप्त करने की क्षमता मिली, उसमें पंडित पद्मसिंह का सर्वोपरि स्थान है।

वरन् यह कहा जाय कि शर्मा जी ने जो दिशा-निर्देश किया, उसे रचनात्मक रूप भी दिया। उनके द्वारा लिखे गए विनोद, समालोचनाएँ, शब्द-चित्र और सम्पादकीय टिप्पणियाँ आज भी उनके मिशनरी जीवन की याद ताजा कर देते हैं। उनमें जीवन से इतनी निकटता थी कि वर्ण्य विषय के अतिरिक्त लेखक

भी कल्पना-लोक में अपनी सम्पूर्ण वैयक्तिक विशेषताओं सहित घूमता-फिरता प्रतीत होने लगता है। उनके प्रोत्साहन से और शुद्धियों के आधार पर आज से २५-३० वर्ष पूर्व जो नवयुवक साहित्य-सृजन की ओर अनुप्रेरित हुए थे उनमें से अनेक हिंदी साहित्य के महान् सर्जकों का सम्मान प्राप्त कर चुके हैं। पंडित पद्मसिंह शर्मा के प्रकाशित साहित्य के अतिरिक्त और कितना ही साहित्य ऐसा पड़ा है, जिसकी अभी ठीक प्रकार से खोज नहीं हुई। यह भी वास्तव में आश्चर्य का विषय है कि उनकी अपेक्षा बहुत कम महत्व के साहित्यकारों पर काफी काम हुआ है। विश्वविद्यालियों ने अनेक कम महत्व के लेखकों को खोज और विशेष अध्ययन का विषय स्वीकार कर लिया है; लेकिन शर्मा जी की ओर किसी का भी ध्यान नहीं जाता।

भारतीय लक्षण-ग्रंथों का इतना प्रकांड और प्रामाणिक पंडित उनके जीवन में तो क्या अब तक भी हिंदी साहित्य में पैदा नहीं हुआ। संस्कृत, हिंदी, उर्दू, फारसी के गम्भीर अध्ययन से उन्होंने हिन्दी को एक विराट् दृष्टि और व्यापक अनुभूति प्रदान की थी। शायद वह हिन्दी के पहले आलोचक थे जिन्होंने 'बिहारी-सतसई' के भाष्य के रूप में एक उदार एवं विराट् साहित्य-देवता की प्रतिष्ठा की और आज अगर वह जीवित होते तो हिंदी में एक महान् आचार्य पद पर आसीन ही नहीं होते बल्कि युगानुकूल साहित्य-मर्यादा की स्थापना करते। खेद का विषय है कि हिंदी के लिखित इतिहासों में पंडितजी पर कोई भी प्रामाणिक चर्चा कहीं भी पढ़ने को नहीं मिलती। इसका कारण कुछ भी रहा हो, परन्तु इतना अवश्य हम कह सकते हैं जिन छुटभइयों की प्रतिभा उनके जीवन-काल में उनके सम्मुख कुछ छोटी सिद्ध होती थी, उन्होंने अपनी लम्बी आयु का लाभ उठाया और उनकी मृत्यु के बाद उनसे बदला इस प्रकार लिया कि साहित्य-मन्दिर से उनकी मूर्ति ही तीर कर दी।

इस संदर्भ में शर्माजी के समर्थ शिष्य श्री बनारसीदास चतुर्वेदीजी का नाम भूलना उनकी सेवाओं के प्रति अकृतज्ञता होगी। केवल वे ही अकेले साहित्यिक हैं, जिन्होंने बार-बार हिंदी जगत् का ध्यान उनकी ओर आकर्षित किया। शर्मा जी ने अपने जीवन-काल में जिन साहित्य-सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, उन्हें उनकी असाधारण कर्मठता से उनके जीवन-काल में ही इतने व्यापक रूप से प्रतिष्ठा मिली; किन्तु इतना लिखने के उपरान्त भी उनकी चर्चा अधिक नहीं सुन पड़ती। हमें विश्वास है कि इस युग का इतिहासकार जब हिंदी का इतिहास लिखने के लिए लेखनी उठायगा तो शर्मा जी के साहित्यिक अनुदान का मूल्य सही-सही आँकेगा।

सुहृद्वर

याते दिवं त्वयि सुहृद्वर पद्मसिंह
तत्रैव सा रसिकतापि गतैव मन्ये।
क्वाहं भवादृशमनन्त सुभाषितज्ञं
प्राप्स्ये हतेन विधिना बहु वञ्चितोऽस्मि।
संस्मृत्य तेऽद्य सरसञ्च कथा कलापं
सत्यं वदामि हृदयं शतधा प्रयाति !
आर्तस्य निर्गृत धृतेर्मम शोक शान्त्यै
त्वत्सन्निधौ गमनेव विनिश्चिनोमि ॥

दौलतपुर
२१ जुलाई १९३२

—महावीरप्रसाद द्विवेदी

उत्तर भारत के प्रमुख हिन्दी और अंग्रेज़ी के प्रकाशक

आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली

द्वारा

प्रकाशन क्षेत्र में प्रगति

अपने अंग्रेज़ी प्रकाशन में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त करने के साथ इन दो ढाई वर्षों में हिन्दी का जो प्रकाशन किया है उससे जहाँ राष्ट्र भाषा के भंडार में वृद्धि हुई है वहाँ हमारा उत्साह भी बढ़ा है। हमारे प्रकाशन का हिन्दी संसार द्वारा मुक्त हृदय से स्वागत किया गया है।

हमारा ध्येय

हिन्दी साहित्य के प्रत्येक अङ्ग पर उच्चकोटि की उपयोगी स्थायी और कलापूर्ण रचनाएँ प्रकाशित करना हमारा ध्येय है, विभिन्न विषयों पर अब तक लगभग साठ से ऊपर पुस्तकें निकल चुकी हैं।

हमारे कुछ विशेष प्रकाशन

निबन्ध और आलोचना

सुमित्रानन्दन पंत (काव्य कला और जीवन दर्शन) : शचीरानी गुर्टू ६)
महादेवी (कला और जीवन दर्शन) : शचीरानी गुर्टू ५)
हिंदी के आलोचक : ,, ५)
हिन्दी कविता में युगान्तर : सुधीन्द्र, एम. ए. ८)
समीक्षायण : कन्हैयालाल सहल ३)
दृष्टिकोण : ,, ,, २॥)
प्रेमचंद : हंसराज 'रहबर' ५)
रोमांटिक साहित्य : प्रो० देवराज ५)
उद्धव-शतक-परिशीलन: अशोककुमार २)
प्रबन्ध-सागर : पंत और शर्मा ४॥)
काव्य के रूप : गुलाबराय ४॥।)
सिद्धान्त और अध्ययन : ,, ५)
मैंने कहा : गोपालप्रसाद व्यास ५)

उपन्यास

विसर्जन : प्रतापनारायण श्रीवास्तव ६)
हृदय-मंथन : सीताचरण दीक्षित ५)
इंसान : यज्ञदत्त शर्मा, एम. ए. ५)

नाटक

उद्धार : हरिकृष्ण प्रेमी २)
विष-पान : हरिकृष्ण प्रेमी २)
स्वप्न-भंग : हरिकृष्ण प्रेमी २)
छाया : हरिकृष्ण प्रेमी १)
शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी
समर्पण : जगन्नाथप्रसाद मिलिंद १॥।)
उर्मिला : पृथ्वीनाथ शर्मा १)
आदिमयुग : उदयशंकर भट्ट ३)

काव्य

बलिपथ के गीत : मिलिंद २॥)
रूप-दर्शन : हरिकृष्ण प्रेमी ८)
नव प्रभात : चन्द्रिकाप्रसाद १)
ग्राम्य साहित्य : रामनरेश त्रिपाठी ४)
काव्यधारा : डा० मदान ३॥)

मनोविज्ञान

बालक का भावविकास : कनल ५)
बालक की कुछ समस्याएँ : ,, १)
बच्चों के खेल खिलौने : ,, ॥)
आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान : ईश्वरचन्द्र शर्मा

आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली

रामचरित-मानस

टीकाकार

श्री पं० रामनरेश त्रिपाठी

द्वितीय संस्करण

रामचरित-मानस की आज तक की टीकाओं में श्री पं० रामनरेश त्रिपाठी की टीका ने बहुत सम्मान प्राप्त किया है। उसके प्रकाशित होते ही प्रथम संस्करण समाप्त हो गया। उसकी महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में कुछ ये हैं :—

- प्रारम्भ में तीन सौ पृष्ठों की मौलिक भूमिका।
- प्रामाणिक और शुद्ध मूल पाठ।
- टिप्पणियों में कठिन शब्दार्थ।
- आकर्षक और कला पूर्ण चित्र।
- सुन्दर और मनमोहक छपाई।

हमें यह सूचित करते हुए प्रसन्नता होती है कि अब रामचरित-मानस तथा त्रिपाठी जी द्वारा लिखित और सम्पादित अन्य समस्त साहित्य हमारे यहां से प्रकाशित हो रहा है।

हिन्दी पुस्तकों का अनुपम संग्रह

हिन्दी के उच्चकोटि के सभी कवियों, नाटककारों, आलोचकों, उपन्यासकारों तथा अन्यान्य विषयों के प्रसिद्ध और प्रामाणिक विद्वानों की साहित्यिक कृतियों का संग्रह हमारे यहां है। हिन्दी की सभी परीक्षाओं की पाठ्य पुस्तकें हमारे यहां उपलब्ध हो सकती हैं। आपको किसी भी हिन्दी पुस्तक की आवश्यकता हो तो निम्नलिखित पते पर मिलिये या पत्र लिखिये :—

आत्माराम एण्ड सन्स

प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता

काश्मीरीगेट, दिल्ली ६

पोस्ट बाक्स नं० १४२९

रामलाल पुरी ... दिल्ली में मुद्रित